शख़्सियत की तामीर

इस्लाम की रौशनी में

मौलाना मुहिब्बुल्लाह क़ासिमी

अनुवाद

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

विषय-सूची

1. दो शब्द	4
2. भूमिका	5
3. ज़िन्दगी का इस्लामी तसव्वुर	7
4. ईमान—इस्लामी ज़िन्दगी की बुनियाद	11
5. नफ़्स का तज़किया	16
6. ज़मीर की बेदारी	20
7. दिल का सुकून	24
8. बेहतरीन इनसान	31
9. बदतरीन इनसान	36
10. नर्म लहज़ा और ख़ुशमिज़ाजी	41
11. हया (शर्म)	45
12. ज़बान का सही इस्तेमाल	49
13. दुनिया की मुहब्बत के बुरे प्रभाव	54
14. अल्लाह पर भरोसा	60
15. ख़ुदकुशी का हराम होना	64
16. ख़ुलूस—ईमान का तक़ाज़ा	68
17. सेहत व ताक़त ज़रूरी है	73
18. लगातार की जानेवाली नेकी	79
19. सब्र और शुक्र	81
20. माद्दापरस्ती (भौतिकवाद) के बुरे प्रभाव	89
21. भाईचारे के तक़ाज़े	93
22. यकसाँ पैमाने	97
23. आपसी सहमति बुराई के लिए दलील नहीं	100
24. ईसार (त्याग की भावना)	105
25. सदक़े (दान) के अस्ल मानी व मतलब	112
26. माल में ग़रीबों का हक़	116

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

''अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त दयावान, बड़ा कृपाशील है।''

दो शब्द

''शख़सियत की तामीर इस्लाम की रौशनी में'' इस किताब के लेखक मौलाना मुहिब्बुल्लाह क़ासिमी साहब हैं, जो एक ख़ुशमिज़ाज और सरगरम नौजवान हैं। यह किताब उन्होंने उर्दू ज़बान में लिखी है। इसका हिन्दी में तर्जमा करते वक़्त मुझे महसूस हुआ कि अल्लाह तआला ने उनके अन्दर तरह-तरह की सलाहियतें रखी हैं। इस किताब में उन्होंने ज़िन्दगी के ज़िन्दा और अमली मामलों और समस्याओं पर बात की है। किताब देखने से यह भी अन्दाज़ा हुआ कि लेखक ने इधर-उधर से हासिल करके कुछ चीज़ें जमा नहीं कर दी हैं, बल्कि हर मामले के अमली पहलू पर ग़ौर किया है, उसे महसूस किया है और फिर उसपर क़लम उठाया है। उन्होंने बहुत ही असरदार अन्दाज़ में दलीलों के साथ अपनी बात पेश की है। यह काम वही व्यक्ति कर सकता है, जो ज़िन्दगी के इन अमली पहलुओं पर बराबर सोच-विचार करता रहता हो और उनके हल के लिए फ़िक्रमन्द रहता हो

इनशा-अल्लाह यह किताब इनसानी समाज के लिए एक बेहतरीन रहनुमा किताब साबित होगी ऐसी हमें उम्मीद है। यह किताब ख़ास तौर से नौजवानों के अन्दर एक नया हौसला और एक नई रूह पैदा करेगी। ज़रूरत इस बात की है कि इस किताब को ज़्यादा-से-ज़्यादा लोगों तक पहुँचाने की कोशिश की जाए और इसका तर्जमा देश की दूसरी ज़बानों में भी किया जाए, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इससे फ़ायदा उठा सकें।

—नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेटरी
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट, दिल्ली

भूमिका

एक मुसलमान की ज़िम्मेदारी यह है कि वह ज़िन्दगी के तमाम पहलुओं में इस्लाम की शिक्षाओं पर अमल करे। चाहे वह घर में हो या घर से बाहर, मस्जिद में हो या बाज़ार में, कारोबार कर रहा हो या मेहनत-मज़दूरी, बीवी-बच्चों के साथ हो या दोस्तों के बीच, रिश्तेदारों से कोई मामला कर रहा हो या आम लोगों से। किसी के साथ उसका ताल्लुक़ मुहब्बत और भाईचारे का हो या किसी से कोई झगड़ा हो गया हो, हर हाल और हर मामले में उसकी ज़िम्मेदारी यह है कि वह जाने कि अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) ने इस सिलसिले में क्या हुक्म दिया है? और किस चीज़ से रोका है?

अफ़सोस है कि मौजूदा दौर में मुसलमानों की ज़िन्दगियाँ कई ख़ानों में बट गई हैं। कुछ की गिनती वे दीनदारी में करते हैं और बाक़ी कामों को उन्होंने दीन से अलग कर रखा है। मिसाल के तौर पर एक आदमी नमाज़ पढ़ता और रोज़े रखता है तो उसे पक्का मुसलमान समझा जाता है, चाहे उसकी समाजी ज़िन्दगी कितनी ही बुरी और घिनावनी हो। वह कारोबार में हलाल और हराम का कोई लिहाज़ न रखता हो, सूद खाता हो, रिश्वत लेता हो, पड़ोसियों को सताता और उनसे गाली-गलौच करता हो, आदि।

इस्लाम में हक़ और अधिकारों की दो क़िस्में की गई हैं—एक अल्लाह के हक़ और अधिकार और दूसरे बन्दों के हक़। हदीसों में आया है कि पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अगर कोई मुसलमान अल्लाह के हक़ और अधिकार अदा करने में कोताही करे तो अल्लाह तआला अपनी मेहरबानी से उसे माफ़ कर सकता है, लेकिन अगर वह बन्दों के हक़ अदा करने में कोताही करेगा और उसकी समाजी ज़िन्दगी ज़ुल्म-व-ज़्यादती

पर आधारित होगी तो अल्लाह तआला क़ियामत के दिन उसे हरगिज़ माफ़ न करेगा, जब तक कि वे लोग उसे माफ़ न कर दें जिनके हक़ उसने दुनिया में हड़प किए थे।

इस किताब में इसी पहलू को नुमायाँ करने की कोशिश की गई है। इसमें वाज़ेह किया गया है कि सच्चा और पक्का मुसलमान बनने के लिए ज़रूरी है कि आदमी अपनी ज़िन्दगी के तमाम पहलुओं में अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) की ख़ुशनूदी को नज़र में रखे और जिन बुरी बातों से उसे रोका गया है, उनसे बचने की कोशिश करे।

अस्ल में यह किताब अलग-अलग वक़्तों में लिखे गए लेखों का संकलन है जो अलग-अलग पत्र/पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। अल्लाह का शुक्र है कि पढ़नेवालों ने उन्हें बहुत पसन्द किया। इसलिए उन लोगों के मुतालबे पर उन लेखों को किताब की शक्ल में प्रकाशित किया जा रहा है।

मैं डॉ॰ मुहम्मद रज़ीउल-इस्लाम नदवी, सेक्रेट्री तसनीफ़ी एकेडमी, जमाअते-इस्लामी हिन्द का शुक्रगुज़ार हूँ। उन्होंने इस किताब को पढ़ा और मुनासिब मशवरे दिए। उसी तरह डॉ॰ मुहम्मद रफ़अत, चेयरमैन, तसनीफ़ी एकेडमी, का भी मैं शुक्रिया अदा करता हूँ कि उन्होंने इस किताब के प्रकाशन की मंज़ूरी दी। अल्लाह तआला इन दोनों को इसका अच्छा बदला इनायत करे।

—मुहिब्बुल्लाह क़ासिमी
20 अगस्त, 2015 ई.

ज़िन्दगी का इस्लामी तसव्वुर

अल्लाह तआला ने इस दुनिया में आदम (अलैहि॰) और उनकी औलाद को पैदा किया और उन्हें अपना ख़लीफ़ा बनाकर एक अस्थायी ज़िन्दगी अता की और एक दिन ख़त्म हो जानेवाली इस दुनिया में भेज दिया। इस दुनिया में उनके बाक़ी रहने और पलने-बढ़ने के लिए वे तमाम चीज़ें बिना किसी बदले और मुआवज़े के उन्हें प्रदान कर दीं जिनकी व्यवस्था करना उनके बस के बाहर था। जब ज़मीन और आसमानों के मालिक ने इनसान को ये तमाम सुहूलतें उपलब्ध करा दीं तब उसे अपना यह सन्देश सुनाया—

> "मैंने जिन्न और इनसानों को केवल इसलिए पैदा किया है कि वे मेरी इबादत व बन्दगी करें।" (क़ुरआन, सूरा-51 ज़ारियात, आयत-56)

इस आयत से पता चला कि इनसान का अस्ल मक़सद अपने पालनहार ख़ुदा की बन्दगी करना है, यानी ख़ुद को हक़ीक़ी मालिक का ग़ुलाम बना देना। लिहाज़ा उसका जो भी हुक्म है उसको पूरा करना ज़रूरी है, चाहे ख़ुशी से हो या न चाहते हुए।

अगर इनसान एक पल के लिए विचार करे तो उसे मालूम होगा कि वह अपनी मरज़ी से पैदा नहीं हुआ, वरना वह इस इम्तिहान-घर में आने से इनकार कर देता, इसलिए कि वह समझ जाता कि मुसीबत और आज़माइश की इन काँटों भरी वादियों से दामन बचाकर निकल जाना और इच्छाओं और कामनाओं की हथियारबन्द सेना से टकराकर अपनी कामयाबी का झण्डा फहरा देना बहुत ही मुश्किल है। हालाँकि पैदाइश के बाद कुछ मुद्दत तक माँ-बाप परवरिश की ज़िम्मेदारी निभाते हैं, मगर उसके बाद ख़ुद अपनी और आनेवाली नस्ल की ज़रूरतों को पूरा करने का भार उसे ही उठाना पड़ता है। चूँकि अल्लाह ने इनसानों के बीच एक ताल्लुक़ और रिश्ता जोड़ रखा है, और क़दम-क़दम पर उन्हें एक-दूसरे का मुहताज बना दिया है, ऐसे में उनके

ग़ुरूर और घमण्ड करने की कोई वजह नहीं हो सकती, क्योंकि मुहताज और ज़रूरतमन्द इनसान घमण्डी और अहंकारी नहीं हो सकता।

अब इनसान के सामने दो ही रास्ते हैं : एक तो यह कि वह अपने हक़ीक़ी मालिक का सही-सही चुनाव करके उसकी इताअत और फ़रमाँबरदारी में लग जाए या अपनी मरज़ी और ख़ाहिशों को अपना ख़ुदा बनाकर अल्लाह तआला के तमाम अहकाम को ताक़ पर रख दे और मनमानी ज़िन्दगी गुज़ारे। इन दोनों बातों में से किसी एक को अपनाने का अल्लाह तआला ने उसको इख़्तियार दिया है। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

> "तो जो कोई चाहे माने और जो चाहे इनकार कर दे। (हर शख़्स को उसका बदला मिलेगा।) (क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-29)

इसलिए इनसान को पूरी तरह मजबूर नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसी इख़्तियार पर क़ियामत के दिन उसका हिसाब-किताब होगा और फिर सज़ा और इनाम का एलान होगा। कुछ जगहें ऐसी भी हैं जहाँ पर इनसानी ताक़त जवाब दे देती है या कोई काम उसकी क़ुदरत से बाहर होता है, तो ऐसे मरहले में अल्लाह तआला की ओर से कोई पकड़ नहीं होती, चाहे उसकी हराम की हुई चीज़ें ही क्यों न हों। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

> "जो बहुत मजबूर और विवश हो जाए, वह हद से गुज़रनेवाला न हो, तो उसपर (हराम चीज़ों के इस्तेमाल में) कोई गुनाह नहीं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-173)

इसी तरह अगर अल्लाह तआला चाहता तो अपने नबियों और रसूलों को दुनिया में न भेजता, बल्कि अपनी किताब पहाड़ या किसी पाक जगह पर उतार देता, या फ़रिश्ता भेजकर रहनुमाई करता, मगर उसने ऐसा नहीं किया, क्योंकि ऐसी सूरत में बन्दा या तो अमली तौर पर पूरी तरह मजबूर और बेबस बन जाता, या फिर फ़रिश्ते और बन्दे के बीच समरूपता न होने की वजह से उसके लिए अल्लाह के हुक्मों पर अमल करना मुमकिन न होता। इसलिए अल्लाह तआला ने नबियों और रसूलों को चुना। उन्होंने लोगों के बीच आकर अमली तौर पर ख़ुदा की शिक्षाओं को तफ़सील के साथ

और वाज़ेह रूप से पेश कर दिया। इन रसूलों और पैग़म्बरों की आख़िरी कड़ी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हैं और आख़िरी किताब क़ुरआन मजीद है, जो ज़िन्दगी गुज़ारने का एक मुकम्मल निज़ाम है। उसी क़ुरआन और हदीस (पैग़म्बर सल्ल॰ की करनी व कथनी) में क़ियामत तक के लिए तमाम मसलों का हल पेश कर दिया गया है।

इस मक़ाम पर पहुँचकर एक इनसान के लिए किसी प्रकार के हीले-बहाने की गुंजाइश बाक़ी नहीं रह जाती। इसलिए इनसान अपने दिल-व-दिमाग़ पर, जिसकी वजह से वह दुनिया को अपनी मुट्ठी में कर लेना चाहता है, और चाँद पर कमन्दे डालने के लिए प्रयत्नशील है, ज़ोर देकर हिदायत की राह चुने और बन्दगी के फ़लसफ़े (दर्शन) को समझकर घमण्ड और अहंकार का दामन छोड़ दे। इसलिए कि घमण्ड और अहंकार अल्लाह की चादर और दोनों जहान के मालिक की सिफ़त (गुण) है, जबकि बन्दे की सिफ़त ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी है, जिसकी वजह से वह कामयाबी हासिल कर सकता है, वरना वह बन्दा नहीं रहेगा, बल्कि नाफ़रमान इबलीस शैतान की तरह हो जाएगा, जिसका ठिकाना जहन्नम है।

ज़िन्दगी का यही वह फ़लसफ़ा है जिसको पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के सहाबा किराम (रज़ि॰) ने समझा। उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की संगत अपनाई और अपनी ज़िन्दगी अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) की इताअत में गुज़ार दी। जिसका नतीजा यह हुआ कि वे इनसानों के बेहतरीन गरोह बन गए। उनके लिए तमाम मुश्किलों का सामना करना आसान हो गया। इसपर अल्लाह ने उन्हें दोनों जहान में सफलता और कामयाबी अता की और अल्लाह उनसे ख़ुश हो गया और वे अल्लाह से ख़ुश हो गए।

यह बात भी है कि इनसान को इस हिदायत की राह पर चलना मुश्किल महसूस होता है। वह समझता है कि यह एक बहुत ही कठिन राह है जिसमें इनसानी समस्याएँ उतार-चढ़ाव की तरह होती हैं। इससे ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी और हवालगी के साथ गुज़र जाना बहुत मुश्किल है। इसके बरख़िलाफ़ मनचाही ज़िन्दगी देखने में बहुत ही ख़ुशगवार और आसान मालूम होती है। यह अस्थायी हालत आनन्ददायक तो महसूस होती है, मगर उसका अंजाम

हमेशा की सज़ा है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"हमने इनकार करनेवालों (नाफ़रमानों) के लिए दर्दनाक अज़ाब तैयार कर रखा है। (क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-102)

अब फ़ैसला इनसान के हाथ में है कि वह अपनी पैदाइश के मक़सद को समझे और हिदायत के रास्ते को चुनते हुए अपने बेनियाज़ हक़ीक़ी मालिक के सामने फ़रमाँबरदारी के साथ अपना सिर झुका दे। ऐसा करने पर उसको फ़रिश्तों से ऊँचा मक़ाम दिया जाएगा।

ईमान–इस्लामी ज़िन्दगी की बुनियाद

'ईमान' मुसलमान का वह हथियार है जिससे वह अपने सबसे बड़े दुश्मन 'शैतान' का मुक़ाबला करता है। इसलिए ईमान का मज़बूत होना ज़रूरी है, ताकि उसके लिए शैतान से मुक़ाबला करना आसान हो जाए। ईमान की मज़बूती के लिए ज़रूरी है कि मुसलमान ईमान की हक़ीक़त से बाख़बर हो, उसकी क़द्रो-क़ीमत और लज़्ज़तों और मिठास को महसूस करे और उसे अपनी जान से ज़्यादा महबूब रखे। अगर ईमान मज़बूत हो तो दुनिया की धोखाधड़ी और चाल से ईमानवाले के क़दम नहीं डगमगाते। नबी (सल्ल॰) का यह इरशाद उसके हौसले को और बढ़ाता है–

"दुनिया ईमानवाले के लिए क़ैदख़ाना और ग़ैर-ईमानवाले के लिए जन्नत है।" (हदीस : मुस्लिम)

जब सच्चाई यह हो तो एक ईमानवाला कुछ दिन रहनेवाली इस दुनिया (जो उसके लिए क़ैदखाने की तरह है) को अपने लिए जन्नत कैसे तसव्वुर कर सकता है? यह कैसे सम्भव है कि उसकी रंगीनी में खोकर उसका ईमान कमज़ोर हो जाए, जो उसे हक़ीक़ी जन्नत में ले जानेवाला है और इस दुनिया से कहीं बेहतर है और जिसमें उसे हमेशा रहना है। क़ुरआन में है–

"उनसे पूछो, यह अंजाम अच्छा है या वह हमेशा रहनेवाली जन्नत, जिसका वादा ख़ुदा से डरनेवाले परहेज़गारों से किया गया है? यह उनका बदला और आख़िरी मंज़िल होगी। उनके लिए उसमें वह सबकुछ होगा, जो वे चाहेंगे। उसमें वे हमेशा रहेंगे। यह तुम्हारे रब के ज़िम्मे एक ऐसा वादा है जो ज़रूर पूरा होगा।"

(क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयतें-15, 16)

'ईमान' इनसान की सबसे बड़ी दौलत है। अगर किसी के पास कुछ सरमाया न हो, ज़ाहिर में वह ग़रीबी की ज़िन्दगी जी रहा हो, मगर उसके

पास ईमान हो तो वह सबसे बड़ा मालदार है। उसके पास दुनिया के ख़ज़ाने की कुंजी न हो, मगर आख़िरत में निजात और कामयाबी की कुंजी उसके पास मौजूद है। इसके बरख़िलाफ़ अगर वह बहुत मालदार हो, दुनिया की सारी नेमतें और सुहूलतें उसके पास मौजूद हों, मगर वह ईमान से ख़ाली हो तो वह अंधेरे और वीरान घर के समान है।

यही वजह है कि समाजी तौर पर मामूली समझा जानेवाला मुसलमान जिसका दिल ईमान की रौशनी से जगमगा रहा हो, मुश्किलों का सामना बड़ी बहादुरी से करता है। उसे सब मंज़ूर होता है, मगर धोखे-भरी इस दुनिया की चमक-दमक से प्रभावित होकर अपने ईमान का सौदा करना उसे मंज़ूर नहीं होता।

इतिहास के अध्ययन से मालूम होता है कि वह ईमान ही था जिसकी बदौलत मुसलमानों ने बड़े-बड़े ख़तरे मोल लिए, मगर उनपर कोई ग़म और मायूसी तारी नहीं हुई, क्योंकि उनके सामने कामयाबी तक पहुँचानेवाला अल्लाह का यह फ़रमान था—

> "हताश न हो और दुखी न हो, यदि तुम ईमानवाले हो, तो तुम्हीं सरबुलन्द रहोगे।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-139)

जिस ईमानवाले का मक़सद हमेशा की ज़िन्दगी की कामयाबी और निजात हो, वह रब की ख़ुशनूदी का तलबगार होता है। वह सिर्फ़ ज़बान से कलिमा ही नहीं पढ़ता, बल्कि अमली तौर पर भी हक़ की गवाही देता है। हज़रत ख़ुबैब-बिन-अदी (रज़ि॰) के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए, फिर उन्हें सूली पर लटका दिया गया, हज़रत सुमैया (रज़ि॰) को भाला मारकर शहीद कर दिया गया, हज़रत अम्मार (रज़ि॰) को मारा-पीटा गया, हज़रत बिलाल (रज़ि॰) को तपती रेत पर लिटा दिया जाता और सीने पर भारी पत्थर डालकर उनको तकलीफ़ें दी जातीं, मगर उन सबने अपने ईमान का सौदा नहीं किया। हज़रत सुहैब रूमी (रज़ि॰) जब हिजरत करके मदीना जाना चाहते थे तो मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने उनका सारा माल और सामान छीन लिया, मगर उनको ज़रा भी अफ़सोस नहीं हुआ और वे ख़ाली हाथ मदीना

चले आए। नबी (सल्ल०) ने उन्हें देखकर ख़ुशी का इज़हार किया और तीन बार यह इरशाद फ़रमाया—

"ऐ अबू-यह्या! यह व्यापार तुम्हारे लिए बहुत नफ़ाबख़्श रहा।"

इनसान की फ़ितरत है कि वह चीज़ों में लज़्ज़त और ज़ायक़ा तलाश करता है। जब वह लज़्ज़त पा लेता है तो फिर उसका रसिया हो जाता है। ईमान भी अपने अन्दर एक ख़ास लज़्ज़त रखता है, मगर यह लज़्ज़त हर शख़्स को नहीं मिल पाती। जैसे एक बीमार व्यक्ति को लज़ीज़-से-लज़ीज़ चीज़ खाने को दे दी जाए, मगर वह उसकी लज़्ज़त से महरूम रहता है। ईमान की लज़्ज़त कौन हासिल कर सकता है? इसके बारे में अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया है—

"जिस शख़्स के अन्दर तीन चीज़ें होंगी वह उनकी वजह से ईमान की मिठास को पा लेगा : एक यह कि उसे अल्लाह और उसके रसूल सबसे ज़्यादा महबूब हों। दूसरी यह कि वह अल्लाह ही के लिए बन्दों से मुहब्बत करता हो। और तीसरी यह कि उसे कुफ़्र में लौटना ऐसे ही नागवार हो जैसे आग में फेंका जाना।" (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस में ईमान की मिठास को हासिल करने के लिए तीन चीज़ों का ज़िक्र किया गया है। आदमी उनका लिहाज़ रखे और ईमान के तक़ाज़ों पर मज़बूती से अमल करता रहे, तो वह दीन के काम को अच्छी तरह अंजाम देगा, जिसके नतीजे में उसपर ईमान के असरात पड़ेंगे और वह ईमान की चाशनी को महसूस करेगा।

इमाम नववी (रह०) ने सहीह मुस्लिम की व्याख्या में ईमान की लज़्ज़त को हक़ीक़ी लज़्ज़त बताते हुए कहा है—

"आलिमों के नज़दीक ईमान की लज़्ज़त अल्लाह की इताअत के ज़रिए से हासिल होती है। सहाबा किराम (रज़ि०) दुनिया की ज़िन्दगी को अल्लाह की इताअत व फ़रमाँबरदारी पर कुरबान कर देने का जज़्बा रखते थे। यह ईमान की मिठास का असर है। अगर इनसान चाहता है कि वह ईमान की मिठास चखे तो उसे फ़र्ज़ों की

पाबन्दी के साथ-साथ नवाफ़िल का भी एहतिमाम करना चाहिए। फिर वह अल्लाह का बेहद महबूब बन जाएगा।"

कोई ईमानवाला, जिसकी यह हालत हो, और वह इन ईमानी ख़ूबियों का मालिक हो, और उसे अल्लाह का क़ुर्ब हासिल हो, उसे ज़रूर ईमान की मिठास महसूस होगी। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने ईमान की लज़्ज़त को पाने के सिलसिले में एक दूसरी जगह फ़रमाया है–

"उस शख़्स ने ईमान का मज़ा चख लिया जो अल्लाह को पालनहार मानकर, इस्लाम को दीन मानकर और मुहम्मद (सल्ल॰) को रसूल मानकर राज़ी हो गया।" (हदीस : मुस्लिम)

इस हदीस से मालूम होता है कि ईमान की लज़्ज़त हासिल करने के लिए अल्लाह को ख़ालिक़ व मालिक मानना और उसके रसूल (सल्ल॰) की इताअत व फ़रमाँबरदारी करना ज़रूरी है। ईमान का तक़ाज़ा है कि वह आप (सल्ल॰) से मुहब्बत करे, आप (सल्ल॰) उसे दुनिया और दुनिया की सारी चीज़ों से ज़्यादा महबूब हों और मुहब्बत का तक़ाज़ा है कि वह आप (सल्ल॰) की पूरी तरह पैरवी करे। और इस्लाम की दावत जिसे लेकर आप (सल्ल॰) इस दुनिया में आए, उसको फैलाए। यह वह कैफ़ियत है जिससे ईमान की लज़्ज़त हासिल होती है।

बहुत-सी चीज़ें ऐसी हैं जिनसे ईमान कमज़ोर होता है। उनमें से कुछ चीज़ों को नीचे बयान किया जा रहा है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"उस शख़्स में ईमान नहीं जिसमें अमानतदारी न हो और उस शख़्स का कोई दीन नहीं जिसके अन्दर अह्द की पासदारी न हो।" (हदीस : मुसनद अहमद)

"वह मुझ पर ईमान नहीं रखता जो ख़ुद तो पेट भरकर रात गुज़ारे और उसे ख़बर हो कि उसका पड़ोसी भूखा है।" (हदीस : तबरानी)

"तुममें से कोई शख़्स उस वक़्त तक ईमानवाला नहीं हो सकता जब तक वह दूसरों के लिए भी वही चीज़ न पसन्द करे जो अपने लिए पसन्द करता है।" (हदीस : बुख़ारी)

"बन्दे का ईमान उस वक़्त तक दुरुस्त नहीं होगा जब तक उसका दिल दुरुस्त न रहे, और उसका दिल उस वक़्त तक दुरुस्त न होगा जब तक उसकी ज़बान दुरुस्त न हो।" (हदीस : मुसनद अहमद)

"ज़िना (व्यभिचार) करते वक़्त ज़ानी (व्यभिचारी) ईमानवाला नहीं रहता, और न शराब पीते वक़्त वह ईमानवाला रहता है। इसी तरह चोरी करते वक़्त वह ईमानवाला नहीं रहता और न उस वक़्त ईमानवाला रहता है जब किसी का माल लूटता है और लोग देखते रह जाते हैं।" (हदीस : बुख़ारी)

इस लिहाज़ से ईमान मुसलमान की सबसे बड़ी दौलत है। उसके लिए केवल ज़बान से इक़रार और दिल में अक़ीदत का सरसरी जज़्बा काफ़ी नहीं है, बल्कि ज़रूरी है कि ईमान की हिफ़ाज़त की जाए और अमल से उसकी गवाही दी जाए।

नफ़्स का तज़किया

इनसान अक़्ल, जिस्म और रूह से मिलकर बना है, इनमें रूह को एक ख़ास मक़ाम हासिल है। रूह अगर अक़्ल और जिस्म को सन्तुलित न रखे, बल्कि ख़ुद बहकने लगे या शैतानी वसवसों और बुराइयों की ओर आकर्षित होने लगे तो इसका असर इनसान की पूरी शख़्सियत पर पड़ेगा। फिर वही इनसान, जिसे अल्लाह ने सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाया था, दुनिया का सबसे नीच और ज़लील इनसान बन जाएगा और जिसे अल्लाह ने अपना ख़लीफ़ा बनाकर दुनिया में भेजा था वह नफ़सानी इच्छाओं का ग़ुलाम होकर शैतान बन जाएगा। इस लिहाज़ से इनसानी नफ़्स का तज़किया (पाक-साफ़ करना) ज़रूरी है, ताकि उसकी शख़्सियत का विकास हो और वह अल्लाह का क़ुर्ब (नज़दीकी) हासिल करके कामयाबी की मंज़िल पा सके।

नफ़्स का तज़किया क्या है?

'तज़किया' के दो मानी हैं : एक मानी सफ़ाई-सुथराई के हैं, जबकि दूसरे मानी बढ़ोत्तरी और विकास या तरक़्क़ी के हैं। इन दोनों मानी का हासिल यह है कि इनसान अपने नफ़्स को कीना, हसद, लालच, नफ़रत, दुश्मनी, घमण्ड, कंजूसी और तंगनज़री जैसी घटिया सिफ़ात (गुणों) से पाक रखे और अपने अन्दर पाकी, सफ़ाई, प्यार, मुहब्बत, शफ़क़त, इनायत और उदारता एवं फ़ैयाज़ी जैसी अच्छी सिफ़ात (गुणों) को पैदा करे और उन्हें परवान चढ़ाए। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"कामयाब हो गया वह जिसने पाकीज़गी इख़्तियार की।"

(क़ुरआन, सूरा-87 आला, आयत-14)

दूसरी जगह अल्लाह तआला फ़रमाता है—

यक़ीनन कामयाब हो गया वह जिसने नफ़्स का तज़किया किया और नामुराद हुआ वह जिसने उसे दबा दिया।"

(क़ुरआन, सूरा-91 शम्स, आयतें-9,10)

हम सब जानते हैं कि नफ़्स इनसान का सबसे बड़ा अन्दरूनी दुश्मन है। अगर उसे कन्ट्रोल में न रखा जाए तो वह इतना सरकश हो जाता है कि ख़ुद इनसान पर ग़ालिब होकर उसे अपनी मर्ज़ी का शिकार बना लेता है और उसको गुनाह करने पर आमादा करता है। दुनिया की ज़िन्दगी को आख़िरत की ज़िन्दगी पर प्राथमिकता देने के लिए उकसाता है। उससे जो चाहता है करवाता है। यहाँ तक कि इनसान उसका ग़ुलाम बनकर इस हद तक गिर जाता है कि उसे अपनी हैसियत का एहसास तक नहीं रहता। इसी लिए प्यारे नबी (सल्ल॰) ने नफ़्स की बुराई से पनाह माँगी है–

"हम अपने नफ़्स की शरारतों और अपने आमाल की बुराइयों से अल्लाह की पनाह माँगते हैं।" (हदीस : तिरमिज़ी)

दूसरी जगह अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने नफ़्स की बहुत-सी ख़राबियों से अल्लाह की पनाह चाही है–

"ऐ अल्लाह! मैं तुझसे पनाह माँगता हूँ बे-बसी, सुस्ती, बुज़दिली, कंजूसी, बुढ़ापा और क़ब्र के अज़ाब से। ऐ अल्लाह! मेरी ज़ात को तक़वा और तज़किया अता फ़रमा। तू उसका वली और मालिक है। ऐ अल्लाह! मैं पनाह माँगता हूँ ऐसे इल्म से जो नफ़ा देनेवाला न हो, ऐसे दिल से जिसमें (तेरा) ख़ौफ़ न हो और ऐसे नफ़्स से जो कभी ख़ुश व सन्तुष्ट न हो और ऐसी दुआ से जो क़बूल न हो।" (हदीस : मुस्लिम)

यह हदीस वास्तव में एक दुआ है, जिसमें ख़ासतौर से उन बुराइयों से पनाह माँगी गई है जो आमतौर पर नफ़्स के बहकावे में आकर अंजाम दी जाती हैं। और जिसका अंजाम इनसान की रुसवाई और ज़िल्लत की शक्ल में सामने आता है। हदीस में उस आदमी को बहुत बहादुर कहा गया है जो अपने नफ़्स को क़ाबू में रखे। प्यारे नबी (सल्ल॰) का इरशाद है–

"पहलवान वह नहीं जो मैदान में किसी को पछाड़ दे, बल्कि पहलवान वह है जो ग़ुस्से के वक़्त अपने नफ़्स को क़ाबू में रखे।" (हदीस : बुख़ारी)

अल्लामा-इब्ने-क़य्यिम (रह०) फ़रमाते हैं–

"सूफ़िया-ए-किराम के दरमियान अपने तज़किए के तरीक़े के सिलसिले में मतभेद होने के बावजूद इस बात पर सहमति है कि इनसान का नफ़्स दिलों को अपने पालनहार से ताल्लुक़ पैदा करने में रुकावट पैदा करता है। और यह कि अल्लाह तआला भी ऐसे शख़्स के क़रीब नहीं होता (जिसका नफ़्स रुकावट पैदा करे) जब तक कि उसकी रुकावट को हटा न दिया जाए या उसपर क़ाबू न पा लिया जाए।"

(इग़ासतुल-लहफ़ान मिन मसाइदिश-शैतान, भाग-1, पृष्ठ-75)

नफ़्स के तज़किए का एक बहुत बड़ा ज़रिआ क़ुरआन मजीद से ताल्लुक़ जोड़ना है। हज़रत इबराहीम (अलैहि०) ने अल्लाह तआला से दुआ की थी–

"ऐ हमारे रब! उन लोगों में ख़ुद उन्हीं की क़ौम से एक ऐसा रसूल उठा जो उन्हें तेरी आयतें सुनाए, उनको किताब और हिकमत की शिक्षा दे और उनकी ज़िन्दगी सँवारे।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-129)

क़ुरआन मजीद, जो पूरी इनसानियत के लिए सरापा हिदायत है, उसकी तिलावत करना, और उसके मानी और तफ़सीर को समझना भी ज़रूरी है, ताकि हम अल्लाह के अहकाम को समझकर उनपर अमल कर सकें। दिल की सफ़ाई के लिए अल्लाह के कलाम की तिलावत ज़रूरी है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक मिसाल से इस बात को स्पष्ट किया है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया–

"बेशक दिल में भी ज़ंग लगता है जैसे लोहे को ज़ंग लगता है। पूछा गया : इसकी सफ़ाई कैसे होगी? आप (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया, अल्लाह के कलाम की तिलावत और मौत को याद करने से।"

(हदीस : बैहक़ी)

इसी तरह जब इनसान का दिल अल्लाह के ज़िक्र से भरा होता है तो उसके दिल को ज़िन्दगी मिलती है, वरना उसपर भी वीरानी और मायूसी छा

जाती है। तज़किए के लिए दिल का साफ़ और उसका ज़िन्दा होना बेहद ज़रूरी है। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का इरशाद है—

"जो शख़्स अपने रब को याद करे और जो न याद करे उन दोनों की मिसाल ज़िन्दा और मुर्दा की-सी है।" (हदीस : बुख़ारी)

मुख़्तसर यह है कि अल्लाह तआला ने इनसान को अशरफ़ (श्रेष्ठ) और मुकर्रम (सम्मानित) बनाया है। इसलिए ज़रूरी है कि वह अपने नफ़्स को क़ाबू में रखे। इबादत, मेहनत और मशक़्क़त के ज़रिए से उसकी तरबियत करे। अल्लाह तआला के अहकाम का पाबन्द होकर ज़िन्दगी बसर करे और अपने नफ़्स को बेहतरीन सिफ़ात से आरास्ता करके बुलन्द किरदारवाला इनसान बने। साथ ही उन तमाम बुरी आदतों से जो नफ़्स को मुर्दा बना देती हैं, या उसे ज़िल्लत और पस्ती की खाई में ढकेल देती हैं, उनसे पूरी तरह परहेज़ करे, ताकि वह अल्लाह का महबूब बन्दा हो जाए।

ज़मीर की बेदारी

अल्लाह तआला ने हर इनसान के अन्दर एक हिसाब लेनेवाला अथवा निगराँ रखा है जिसे ज़मीर या अन्तरात्मा कहा जाता है। ज़मीर जब तक जागता रहता है, सब कुछ ठीक रहता है, मगर उसके मुर्दा होते ही शरीर के सभी अंग अच्छे-बुरे का फ़र्क़ खो देते हैं और इनसान नफ़्स की रौ में बह जाता है।

ज़मीर के बेदार रहने या मुर्दा हो जाने का कोई मौसम नहीं होता, बल्कि समाज में जब भी बुराई, भ्रष्टाचार या नाजाइज़ कामों की तारीफ़ और गुणगान होता है, या बुरे इनसान की शान में झूठी शान-शौकत का बखान होता है, उस वक़्त इनसान का ज़मीर शैतान का रूप अपना लेता है और वह समाज में नकारात्मक किरदार अंजाम देने लगता है। शुरू में वह इस बुरे काम और नकारात्मक किरदार को चुनौती के तौर पर लेता हैं। मिसाल के तौर पर वह सोचता है कि जब दूसरे लोग ऐसा करके समाज में पसन्दीदा निगाहों से देखे जा रहे हैं तो फिर वह क्यों न ऐसा करे? इसलिए वह अपनी मेहनत और कोशिश को तेज़ कर देता है। जब तक उसे इस बुरे काम के बुरे अंजाम का एहसास होता है, तब तक वह उस दलदल में धंस चुका होता है, जिससे निकलने के लिए उसे पहले से ज़्यादा मेहनत की ज़रूरत होती है। ग़रीबी का डर उसे इस दलदल में मुर्दा ज़िन्दगी जीने के लिए मजबूर करता है। फिर वह झूठ, रिश्वत, चोरी, हत्या और ख़ून-ख़राबे का बाज़ार गर्म कर देता है जिससे समाज में बेचैनी और अशान्ति फैल जाती है।

रिश्वत लेना एक बहुत बुरा काम है। हक़दार से उसका हक़ छीनकर किसी दूसरे को हक़दार बनाने के लिए यह बुरा काम अंजाम दिया जाता है। इस काम में रिश्वत देनेवाला और रिश्वत लेनेवाला दोनों शामिल होते हैं। क्योंकि एक व्यक्ति अगर वह हक़दार नहीं है, तो क्यों दूसरे का हक़ लेने की कोशिश कर रहा है। फिर यह जानते हुए कि इसमें हक़दार का हक़ मारा

जाएगा, रिश्वत लेनेवाला ग़लत और नाजायज़ तरीक़े से उसकी मदद कर रहा है। इसलिए दोनों गुनहगार होंगे।

उसकी एक शक्ल यह भी होती है कि किसी की मदद करते वक़्त उसकी मजबूरी का फ़ायदा उठाकर उसके बदले माल की माँग करे या लाचार व्यक्ति उसको पैसा देने के लिए मजबूर हो। क़ुरआन मजीद में यहूदियों की यह सिफ़त बताई गई है–

"ये लोग झूठ को सुननेवाले और हराम का माल खानेवाले हैं।"
(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-42)

हज़रत अली (रज़ि॰) और इब्ने-मसऊद (रज़ि॰) ने इस आयत में आया 'हराम का माल' का मतलब 'रिश्वत' बताया है।

प्यारे नबी (सल्ल॰) ने भी रिश्वत का लेन-देन करनेवालों पर लानत फ़रमाई है। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) फ़रमाते हैं–

"अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने रिश्वत लेने और रिश्वत देनेवालों पर लानत फ़रमाई।" (हदीस : तिरमिज़ी)

एक दूसरी हदीस में नबी (सल्ल॰) का इरशाद है–

"जिस क़ौम में सूद आम हो जाए, वह अकाल का शिकार हो जाती है और जिस क़ौम में रिश्वत आम हो जाए वह ख़ौफ़ और आतंक का शिकार हो जाती है।" (हदीस : मुसनद अहमद)

रिश्वत का यह तरीक़ा न केवल परेशानियाँ पैदा करता है, बल्कि ज़िन्दगी को भी ख़तरे में डाल देता है। आजकल जो मकान तैयार किए जाते हैं उनमें उतना पैसा नहीं लगता जितना उसके बेचनेवाले उनकी क़ीमत रखते हैं, या दूसरी चीज़ें जो इनसानों की बुनियादी ज़रूरतों में से हैं, उनकी बहुत ज़्यादा क़ीमत रख दी जाती है। जब बिल्डर या व्यापारी से इस सिलसिले में मालूम किया जाता है तो वे कह देते हैं कि हमें इन चीज़ों की तैयारी में बहुत ज़्यादा रिश्वत देनी पड़ती है, उसके बिना हम उन्हें तैयार नहीं कर सकते।

ऐसे व्यापारी अपनी चीज़ों की क़ीमत को मुनासिब रखने के लिए रिश्वत में तो कमी नहीं कर पाते, क्योंकि वह उनके बस में नहीं होता, मगर वे मटेरियल और लागत में कमी कर देते हैं, जिससे वह मकान या सामान, इनसान की हलाकत की वजह बन जाता है। आए दिन इस तरह की घटनाएँ अख़बारों में पढ़ने को मिलती हैं। रिश्वत का यह माल सफ़ेदपोश पूँजीपतियों की जेब में जाता है। पहली बात तो यह कि ऐसी घटनाओं की छान-बीन नहीं होती। अगर जनता की माँग व प्रदर्शन के नतीजे में कुछ कार्रवाई हुई भी तो सिर्फ़ वही लोग पकड़ में आते हैं जो रिश्वत देनेवाले होते हैं, मगर पर्दे के पीछे रहनेवाले सफ़ेदपोश सरमायादारों का कुछ नहीं बिगड़ता।

इस तरह रिश्वत और भ्रष्टाचार का आम रिवाज हो जाता है। फिर अन्दर-ही-अन्दर इस बुरे काम की तारीफ़ और उसको मज़े ले-लेकर बयान करने का सिलसिला शुरू हो जाता है। तब यह रवैया उनके आसपास रहनेवाले आम लोगों में इस बुराई को पैदा करने का ज़रिआ बन जाता है, जो समाज के लिए नासूर साबित होता है।

ग़ौर करने की बात यह है कि एक व्यक्ति अपने बच्चे को उसकी ज़हनी क़ाबिलियत की वजह से डॉक्टर या इंजीनियर बनाना चाहता है, ताकि समाज में उसका नाम हो और वह लड़का भविष्य में उसके लिए किसी बैंक का ए॰टी॰एम॰ साबित हो, जिसमें हर वक़्त रुपए भरे हों, तो वह उसके लिए डोनेशन (Donation) के तौर पर लाखों रुपए ख़र्च कर देता है। फिर जब यह बच्चा बड़ा होकर अपनी शिक्षा पूरी कर लेता है तो अपने बाप के सपनों को पूरा करने के लिए अपने ज़मीर का सौदा करता है और रिश्वत का खेल शुरू कर देता है।

मौजूदा दौर में ऐसी ही शिक्षा को अहमियत दी जाती है, जो रिश्वतख़ोरी की बुनियाद पर खड़ी हो। ऐसे में दूसरे लोग इस मैदान में पीछे क्यों रहें। इसमें इज़्ज़त भी है और पैसा भी। यही मामला देश के उन नेताओं का है जो चुनाव में कामयाब होने के बाद मिलनेवाले बेहिसाब पैसों के लिए चुनाव के दौरान लाखों-करोड़ों रुपए ख़र्च कर देते हैं। फिर उसके बाद वे क्या करते हैं यह बताने की ज़रूरत नहीं है। यही हाल सभी मामलों में है। शायद ही

कोई जगह हो जो इससे ख़ाली हो।

समाज लोगों से बनता है। उसका निर्माण और विकास या उसके बरख़िलाफ़ बरबादी और पतन का मामला भी उसमें रहनेवाले लोगों पर ही निर्भर करता है। अगर हम चाहते हैं कि हमारे समाज में अम्न व शान्ति और खुशहाली रहे तो हमें 'अच्छाई का हुक्म देने और बुराई से रोकने' की अपनी ज़िम्मेदारी को अंजाम देना होगा अन्यथा समाज के लोग बड़ी तादाद में अपराधों व बुराइयों में लिप्त हो जाएँगे और ऐश व आराम और माल-दौलत के घमण्ड में चूर होकर दूसरों को भी इस मायाजाल में फंसने पर मजबूर करेंगे।

ज़मीर को ज़िन्दा रखने के लिए हमें इस्लामी हिदायतों पर चलना होगा। हर वक़्त यह बात मन में बिठाने की ज़रूरत है कि दुनिया की ज़िन्दगी एक अस्थायी ज़िन्दगी है। उसकी चमक-दमक केवल धोखा है। अस्ल ज़िन्दगी आख़िरत की है। जब हम इस्लामी शिक्षाओं पर अमल करेंगे और मज़बूती से उसपर जमे रहेंगे तो हमारा ज़मीर हमेशा बेदार रहेगा। और हम हीन भावना (कम या हक़ीर होने का एहसास) का शिकार होकर अस्थायी दुनिया को अहमियत देने के बजाय आख़िरत की हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी और उसकी राहत और सुकून को ज़्यादा अहमियत देंगे।

दिल का सुकून

इस कायनात में इनसानों की अनेक ज़रूरतें हैं जिनको पूरा करने के लिए उन्हें न जाने कितनी मुसीबतों और परेशानियों का सामना करना पड़ता है। ख़ासतौर से मौजूदा दौर में लोगों ने अपनी ज़िन्दगी का एक अलग मेयार बना रखा है। ऐश व आराम के सामान को हासिल करने में वे इतने मग्न हो गए हैं कि उनके पास न वक़्त है और न सोचने के लिए ख़ाली दिमाग़! अगर कुछ है तो केवल माल-दौलत हासिल करने की धुन, ज़िन्दगी का मेयार बनाए रखने की चिन्ता! जिसने इनसानों की ज़िन्दगी को बेहाल और दुखी कर रखा है। उन्हें ग़म है तो केवल इस बात का कि वे दूसरों की तरह अमीर क्यों नहीं! धुन है तो माल बटोरने की। अगर कुछ हाथ आ गया तो और ज़्यादा की इच्छा। मानो इनसान हर हाल में बेहाल है। उसका चैन और सुकून कहीं खो गया है, जो लाख कोशिशों के बावजूद भी उसे नहीं मिलता! सब कुछ पास होते हुए भी उसका हाथ ख़ाली है। ऐश व आराम की तमाम चीज़ों के बावजूद वह दिल का सुकून चाहता है।

इनसान यह भूल गया है कि दुनिया में अगर ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए बहुत-से सामान की ज़रूरत है तो इस दुनिया का ख़ालिक़ ही वे तमाम चीज़ें इनसान को देता है। अगर इनसान यह समझता है कि दुनिया की तमाम राहतें उन्हीं रुपए-पैसों से ख़रीदी जा सकती हैं तो यह उसकी बहुत बड़ी भूल है, क्योंकि उनका मालिक सिर्फ़ अल्लाह है, जो सूखी रोटी खिलाकर चटाई पर भी गहरी नींद की नेमत अता कर देता है, जो अच्छी क़िस्म का खाना खाकर नर्म और गद्देदार बिस्तरों पर सोनेवालों को नहीं मिलती। दिल का सुकून हासिल करने के लिए आज लाखों रुपए ख़र्च किए जाते हैं, मगर कोई फ़ायदा नहीं होता!

मालूम हुआ कि अस्ल राहत और सुकून किसी और चीज़ में है। उसे ढूँढ़ने की ज़रूरत है। और वह है अल्लाह का ज़िक्र जिसके बारे में अल्लाह

तआला फ़रमाता है–

"सुन लो, अल्लाह के ज़िक्र से ही दिलों को सुकून हासिल हुआ करता है।" (क़ुरआन, सूरा-13 रअ्द, आयत-28)

अल्लाह तआला ने इनसानों की हर तरह रहनुमाई की है और उनके लिए ज़रूरत की सारी चीज़ें उपलब्ध कर दी हैं। इनसान की सबसे बड़ी ज़रूरत उसके दिल का सुकून है। और इसे हासिल करना अल्लाह से ताल्लुक़ के बग़ैर मुमकिन नहीं है। अगर इनसान अल्लाह से ताल्लुक़ पैदा करता है तो उसे किसी बात की चिन्ता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि उसका ताल्लुक़ दोनों जहान के रब से है जो सारी ज़रूरतें पूरी करता है। इस तरह इनसान को यकसूई (एकाग्रता) हासिल हो जाएगी जो दिल के सुकून के लिए बहुत ज़रूरी है। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"तुम मुझे याद करो मैं तुम्हें याद करूँगा।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-152)

क़ुरआन की इस आयत में और इस जैसी दूसरी आयतों में जहाँ 'ज़िक्र' का शब्द आया है उसका मतलब हर वह काम है जिसे अल्लाह ने इनसानों के लिए ज़रूरी क़रार दिया है और जिससे अल्लाह की नज़दीकी हासिल होती है। 'ज़िक्र' ज़बान से हो, जैसे अल्लाह तआला की तसबीह व तारीफ़ और उसकी बड़ाई बयान करना, या दिल से हो, जैसे कायनात में फैली हुई चीज़ों में अल्लाह तआला की ज़ात और उसकी ख़ूबियों की दलीलें तलाश करना, या फिर जिस्मानी तौर से, जैसे अल्लाह की इताअत व बन्दगी करना। मिसाल के तौर पर नमाज़, रोज़ा, हज और ज़कात आदि इबादतों की पाबन्दी करना।

इनसान अगर अल्लाह तआला से लौ लगाए, उसकी इताअत व फ़रमाँबरदारी करे, उसको अपनी तमाम ज़रूरतों का पूरा करनेवाला और मुश्किल कुशा समझे और हर पल उसे याद करे, तो फिर अल्लाह तआला उसकी मुश्किलों को हल करेगा और हर तरह से उसकी मदद फ़रमाएगा। इस तरह अल्लाह तआला की याद से इनसान मुश्किल हालात में भी सुकून पा सकता है, जो उसके लिए बड़ी कामयाबी है। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"अल्लाह को ख़ूब याद करो ताकि तुम्हें कामयाबी हासिल हो!"

(क़ुरआन, सूरा-62 जुमुआ, आयत-10)

उलमा इस बात पर सहमत हैं कि दिलों को भी ज़ंग लगता है, जैसे लोहे को ज़ंग लगता है। दिल को भी ऐसी ही प्यास लगती है जैसे खेती को लगती है और वह भी उसी तरह सूख जाता है जैसे खेती सूख जाती है। इसलिए दिल को भी उन चीज़ों की ज़रूरत होती है जो उसके ज़ंग को दूर कर दे और उसकी प्यास बुझाएँ।

अल्लामा इब्ने-क़य्यिम (रह॰) का बयान है कि मैंने शैख़ुल-इस्लाम इब्ने-तैमिया (रह॰) से सुना, वे फ़रमाते थे—

"अल्लाह का ज़िक्र दिल के लिए ऐसे ही है, जैसे मछली के लिए पानी, ग़ौर करो कि उस मछली का क्या हाल होगा जिसे पानी से निकाल लिया जाए।"

(अल-वाबिलुस्सय्यिब मिनल-कलिमित्तय्यिब, पृष्ठ-63)

मालूम हुआ कि अल्लाह तआला से बन्दों का ताल्लुक़ बहुत गहरा होना चाहिए। इस लिहाज़ से इनसान की सबसे बड़ी ज़रूरत अल्लाह का ज़िक्र है। और इसी से दिलों को ज़िन्दगी और चैन व सुकून हासिल होता है। इसलिए ज़रूरी है कि हर वक़्त अल्लाह का ज़िक्र किया जाए। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"ऐ ईमान लानेवालो! अल्लाह को ज़्यादा-से-ज़्यादा याद करो और सुबह व शाम उसकी बड़ाई बयान करते रहो।"

(क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयतें-41, 42)

इस दुनिया में इनसान हर तरह से अपने दुश्मनों से घिरा हुआ है, उसका नफ़्स उसे बुराइयों पर उभारता है, मन की ख़ाहिशें और शैतान उसे बरबादी की तरफ़ ले जाते हैं। ऐसे में उसे एक ऐसे रक्षक की ज़रूरत होती है जो उसे उसके तमाम दुश्मनों से महफ़ूज़ रखे। यह रक्षक अल्लाह का ज़िक्र है—

"अल्लाह को ज़्यादा-से-ज़्यादा याद करनेवाले मर्द और औरतें—इनके लिए अल्लाह ने मग़फ़िरत और बेहतरीन बदला तैयार कर रखा

है।"   (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-35)

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया–

"जो लोग अल्लाह का ज़िक्र करते हैं, फ़रिश्ते उन्हें घेर लेते हैं, उनपर रहमत का साया होता है और उन्हें दिल का सुकून हासिल होता है, फिर अल्लाह तआला अपनी मजलिस (फ़रिश्तों) में उनका ज़िक्र करता है।"   (हदीस : तिरमिज़ी)

अल्लाह का ज़िक्र दिल की ज़िन्दगी है, दिल का सुकून पाने का तरीक़ा है। इससे मुसीबतें ख़त्म होती हैं और ग़म दूर होता है। इनसान का दुश्मन शैतान दूर भाग जाता है। अल्लाह तआला को ख़ूब याद करना उसके साथ हमारे ताल्लुक़ को मज़बूत करता है।

यह एक आम बात है कि इनसान उन्हीं चीज़ों को याद रखता है जिनको वह अहम समझता है, और अल्लाह से ज़्यादा अहम बन्दे के लिए और कौन हो सकता है? इसलिए इनसान को उसका ज़िक्र तो हर हाल में करना चाहिए। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"अल्लाह का ज़िक्र हर चीज़ से बड़ा है।"

(क़ुरआन, सूरा-29 अनकबूत, आयत-45)

अल्लाह का ज़िक्र उसकी अज़मत व बड़ाई को दिल में बिठाता है, जिससे इनसान बुरे कामों से बच जाता है। बुरे काम कर गुज़रने पर इनसान का ज़मीर (अन्तरात्मा) उसको मलामत करता रहता है। कामयाबी और सुकून पाने के लिए अल्लाह का ज़िक्र बहुत ज़रूरी है। इसकी अहमियत को देखते हुए अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या मैं तुम्हें वह अमल न बताऊँ जो तुम्हारे मालिक (यानी अल्लाह) के नज़दीक सबसे अच्छा और पाकीज़ा है, तुम्हारे दर्जों को बुलन्द करनेवाला है और अल्लाह की राह में जिहाद करते हुए तुम अल्लाह को न माननेवालों की गर्दनें मारो और वे तुम्हारी गर्दनें मारें, इससे भी बढ़कर है?" सहाबा (रज़ि०) ने कहा, क्यों नहीं, ऐ अल्लाह के रसूल! आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह का ज़िक्र।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

अरबी की एक कहावत है, "इनसान एहसान का गुलाम होता है।" इसलिए कोई आदमी अगर किसी की मदद करता है तो वह उसका एहसानमन्द हो जाता है, हर वक़्त उसे याद करता है और उसके एहसान को नहीं भूलता। इनसान पर अल्लाह तआला के इतने एहसान हैं कि वह उनकी गिनती नहीं कर सकता। मगर इसके बावजूद वह अपने माल-दौलत और औलाद की वजह से दुनियावी मामलों में इतना मग्न हो जाता है कि अल्लाह ही को भूल जाता है जिसके एहसानों के सहारे वह जी रहा होता है और पूरा भरोसा इस दुनियावी साज़ो-सामान पर कर बैठता है। ख़ुद को बड़ा समझने लगता है, जिसके नतीजे में घमण्ड व अहंकार का शिकार हो जाता है। यही घमण्ड व अहंकार अल्लाह का अज़ाब बनकर उसकी बरबादी का ज़रिआ बन जाता है। और अल्लाह की रहमतों से कोसों दूर हो जाता है। इसलिए अल्लाह तआला ने चेतावनी देते हुए फ़रमाया है—

"ऐ ईमान लानेवालो! तुम्हारे माल और तुम्हारी औलाद तुम्हें अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल न कर दें। जो कोई ऐसा करे तो ऐसे ही लोग घाटे में रहनेवाले हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-63 मुनाफ़िक़ून, आयत-9)

दूसरी जगह अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"और जो मेरे ज़िक्र से मुँह मोड़ेगा उसके लिए दुनिया की ज़िन्दगी भी तंग होगी और क़ियामत के दिन हम उसे अन्धा उठाएँगे।"

(क़ुरआन, सूरा-20 ताहा, आयत-124)

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह॰) इस आयत की तफ़सीर बयान करते हुए लिखते हैं—

"दुनिया में ज़िन्दगी के तंग हो जाने का मतलब यह नहीं है कि उसे माली तंगी होगी, बल्कि इसका मतलब है कि यहाँ उसे चैन नसीब न होगा। करोड़पति भी होगा तो बेचैन रहेगा। बहुत बड़ा हुक्मरान भी होगा तो बेकली और बेचैनी से छुटकारा न पाएगा। उसकी दुनियावी कामयाबियाँ हज़ारों तरह की नाजाइज़ कोशिशों का

नतीजा होंगी, जिनकी वजह से अपने ज़मीर से लेकर आसपास के सारे माहौल तक हर चीज़ के साथ उसकी खींचतान लगातार जारी रहेगी, जो उसे कभी शान्ति, सुकून और सच्ची ख़ुशी के साथ जीने न देगी।" (तर्जमा क़ुरआन मजीद, पृष्ठ-819)

एक हदीस में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह कहता है कि मैं बन्दे के उस गुमान के क़रीब होता हूँ जो वह मुझसे करता है। जब वह मुझे याद करता है तो मैं उसके पास होता हूँ, जब वह मुझे अपने मन में याद करता है तो मैं भी उसे अपने मन में याद करता हूँ। और अगर वह लोगों में मेरा ज़िक्र करता है तो मैं भी उसे बेहतर जमाअत (फ़रिश्तों) में याद करता हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

सहाबा (रज़ि॰) और हमारे बुज़ुर्गों का तरीक़ा भी यही रहा कि वे दिल के सुकून की ज़रूरत को देखते हुए अल्लाह के ज़िक्र को बड़ी अहमियत देते थे। दूसरी ज़रूरतें उनके नज़दीक कमतर दरजा रखती थीं। यही वजह है कि जब प्यारे नबी (सल्ल॰) से हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) ने दरख़ास्त कि उन्हें एक ख़ादिम की ज़रूरत है तो आप (सल्ल॰) ने उनसे कहा—

"क्या मैं तुम्हें ऐसी चीज़ न बता दूँ जो तुम्हारे लिए ख़ादिम से बेहतर हो? जब तुम अपने बिस्तर पर (सोने के लिए) जाओ तो 33 बार सुब्हानल्लाह, 33 बार अल-हम्दुलिल्लाह और 34 बार अल्लाहु अकबर पढ़ लिया करो। यह तुम्हारे लिए ख़ादिम से बेहतर है।"
(हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) ने फ़रमाया—

"शैतान आदम की औलाद के दिल पर सवार रहता है, जब वह भूल या ग़फ़लत का शिकार होता है तो शैतान उसे बढ़ावा देता है और जब अल्लाह को याद करता है तो वह पीछे हट जाता है।"
(तफ़सीर तबरी, सूरा नास)

हज़रत हसन बसरी (रह॰) कहते हैं—

"तीन चीज़ों में मिठास तलाश करो। नमाज़, ज़िक्र और क़ुरआन की तिलावत। अगर इनमें तुम्हें मिठास मिले तो ठीक है, वरना याद रखो कि दरवाज़ा बन्द है।"

(तहज़ीबु मदारिजिस्सालिकीन, पृष्ठ-463)

आज इनसान परेशानहाल है और अपनी परेशानी को हर जगह बयान करता फिरता है। क्या उसने कभी अल्लाह के सामने अपनी फ़रियाद रखी? कभी उसने अल्लाह के इस फ़रमान—"सब्र और नमाज़ से मदद लो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-45) को नज़र में रखा? जो उसका ज़िक्र और उससे ताल्लुक़ पैदा करने का ज़रिआ है।

फिर दुनिया की ये चीज़ें जिनकी हैसियत अल्लाह के सामने मक्खी के पर के बराबर भी नहीं इनसान को दिली सुकून कैसे दे सकती हैं? अल्लाह के ज़िक्र से ग़फ़लत की हालत में शैतान उसपर सवार रहता है और तरह-तरह के बुरे ख़यालों से उसके दिल को परेशान रखता है, तो उसे दिल का सुकून कैसे हासिल हो सकता है?

इसलिए दिल के सुकून के लिए अल्लाह का ज़िक्र बेहद ज़रूरी है।

बेहतरीन इनसान

इस दुनिया में अलग-अलग तरह के इनसान बसते हैं। उनमें कुछ अच्छे होते हैं और कुछ बुरे। दुनिया का माहौल चाहे जितना ख़राब हो गया हो, मगर आज भी लोग अच्छे इनसानों से मुहब्बत करते हैं और उनके पास बैठकर दिल का सुकून हासिल करते हैं। बुराइयों के फैल जाने के बावजूद अच्छाइयों की ओर लोग लपकते हैं और बुरे लोगों से नफ़रत करते हैं। वे चाहते हैं कि दुनिया में अम्न व सुकून क़ायम हो। किसी को तकलीफ़ हो तो दूर व पास हर जगह के लोग हमदर्दी के लिए जमा हो जाएँ। सवाल यह पैदा होता है कि अच्छा इनसान कौन है? इनसान के अच्छे या बुरे होने का पैमाना क्या है?

प्यारे नबी (सल्ल॰) ने साफ़ शब्दों में इसका जवाब दिया है। आप (सल्ल॰) की तरबियत का एक अलग अन्दाज़ था। एक बार आप (सल्ल॰) ने सहाबा (रज़ि॰) से कहा, "क्या मैं तुम्हें न बता दूँ कि तुममें से बेहतरीन इनसान कौन है?" यह बात आप (सल्ल॰) ने तीन बार दोहराई। सहाबा (रज़ि॰) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप ज़रूर बताएँ।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "तुममें बेहतरीन इनसान वह है जिससे अच्छाई की उम्मीद रखी जाए और जिसकी बुराई से दूसरे लोग महफ़ूज़ रहें।"
>
> (हदीस : तिरमिज़ी)

मालूम हुआ कि बेहतरीन इनसान वह है जो दूसरों के साथ भलाई का मामला करनेवाला हो और वे उससे पूरी तरह महफ़ूज़ हों। इनसान की फ़ितरत है कि वह फ़ायदा चाहता है और नुक़सान उसे गवारा नहीं होता। यही फ़ितरत इस्लाम की भी है। वह चाहता है कि इनसानियत को बढ़ावा मिले और इनसानों को किसी तरह की कोई तकलीफ़ न दी जाए। इस्लाम

समाज सेवा की पूर्ण और व्यापक कल्पना पेश करता है। जो इनसान दूसरे इनसानों को नफ़ा (लाभ) पहुँचाए वही बेहतरीन इनसान है। अल्लाह ने दुनिया में जितनी चीज़ें पैदा की हैं वे सभी इनसान की सेवा में लगी हुई हैं। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"लोगों में बेहतर वह है जो लोगों के लिए ज़्यादा नफ़ा पहुँचानेवाला हो।" (हदीस : बैहक़ी)

इनसान को दूसरी चीज़ों के मुक़ाबले में ज़्यादा फ़ायदेमन्द होना चाहिए। उसे दूसरों को फ़ायदा पहुँचाने की कोशिश करना चाहिए। चाहे वह फ़ायदा दीन का हो या दुनिया का, मगर दीन का फ़ायदा दुनिया के फ़ायदे से बेहतर है। अगर कोई इनसान दीन की बात पहुँचाता है, इनसानों को अल्लाह के अहकाम (आदेशों) की तालीम देता है, तो वह इनसान बेहतरीन माना जाएगा।

अगर किसी इनसान ने किसी दूसरे इनसान की ज़रूरत पूरी की और उसके काम में उसकी मदद की तो यह भी फ़ायदा पहुँचाने की एक सूरत है। इसे दानशीलता या हमदर्दी कहा जाता है। ऐसा इनसान भी अच्छा इनसान माना जाएगा। अगर वह दूसरे को कोई फ़ायदा न पहुँचाए तो कम-से-कम उनको दुख भी न पहुँचाए। अगर वह तकलीफ़ पहुँचाने से बाज़ न आए तो वह आदमी बुरा इनसान माना जाएगा।

क़ुरआन मजीद अल्लाह की भेजी हुई किताब है। यह इनसान को बेहतरीन (सर्वश्रेष्ठ) इनसान की हैसियत से ज़िन्दगी गुज़ारने की शिक्षा देती है। बग़ैर किसी लालच के क़ुरआन की शिक्षाओं पर अमल करने और इसका प्रचार-प्रसार करनेवाला यक़ीनन अच्छा इनसान होगा। इनसानियत की तरक़्क़ी और उसके फलने-फूलने का नुस्ख़ा क़ुरआन मजीद है। इसमें पूरी इनसानियत के लिए हिदायत और रहनुमाई मौजूद है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का इरशाद है—

"तुममें बेहतरीन इनसान वह है जो क़ुरआन सीखे और सिखाए।"
(हदीस : बुख़ारी)

इनसान अपने किरदार ही से अच्छा या बुरा समझा जाता है। सामाजिक ज़िन्दगी, जो इस्लाम में बहुत पसन्दीदा और अहम है, उसकी बुनियाद ही इनसान के कामों और किरदार पर है। अग इनसान का रवैया अच्छा नहीं होगा तो न केवल सामाजिक ज़िन्दगी गुज़ारना मुमकिन नहीं, बल्कि समाज का माहौल ख़राब होगा। नित-नई समस्याएँ जन्म लेंगी। सामाजिक ज़िन्दगी टूट-फूटकर बिखर जाएगी और पूरा समाज मतभेद और बिखराव का शिकार होकर रह जाएगा।

इनसान के अच्छे काम उसकी बेहतरीन शख़सियत को बनाते हैं। जब नेक इनसान दुनिया से चला जाता है तो भी उसके अच्छे कामों को लोग याद करते हैं। उसके अच्छे काम सदक़ा-ए-जारिया बन जाते हैं। इसलिए वह आदमी यक़ीनन बेहतर माना जाएगा। जिसने उम्र भी लम्बी पाई और काम भी अच्छे किए। एक हदीस में है कि एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से एक देहाती ने सवाल किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! लोगों में बेहतरीन इनसान कौन है?" आप (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया—

"जिसकी उम्र लम्बी हो और उसके काम अच्छे हों।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

इनसान का किरदार बनाने, सँवारने और निखारने के लिए ही नबी (सल्ल०) को इस दुनिया में भेजा गया। आप (सल्ल०) ने अपने मिशन को वाज़ेह करते हुए फ़रमाया—

"मैं अच्छे अख़्लाक को पूरा करने के लिए भेजा गया हूँ।"

(हदीस : बैहक़ी)

अच्छे अख़्लाक़ से ही इनसान अच्छा बनता है। एक दूसरी हदीस में आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"तुममें बेहतरीन इनसान वह है जो तुममें अख़लाक़ के लिहाज़ से सबसे अच्छा हो।" (हदीस : बुख़ारी)

अख़लाक़ इनसानियत का ज़ेवर है। उससे शख़सियत में निखार पैदा होता है नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"नेकी अच्छे अख़लाक़ का नाम है।" (हदीस : मुस्लिम)

जो इनसान अख़लाक़वाला होगा, उससे भले की ही उम्मीद की जाती है। यह ख़ूबी जिस इनसान में है वह बेहतरीन इनसान है। बहुत-से लोग ऐसे हैं, जिनका समाज में बहुत नाम चलता है और उनकी ख़ूब तारीफ़ें होती हैं, लेकिन वे अपनी निजी ज़िन्दगी में और अपने घरवालों और बीवी-बच्चों के लिए बहुत बुरे होते हैं। वे उनका हक़ अदा नहीं करते, उनकी ज़रूरतों का ख़याल नहीं रखते और उनकी तरबियत व सुधार से ग़ाफ़िल रहते हैं। ऐसे लोग हक़ीक़त में अच्छे इनसान नहीं हैं। अच्छे इनसान वे हैं जो अपने घरवालों के लिए भी अच्छे हों। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का इरशाद है—

"तुममें बेहतर इनसान वह है जो अपने घरवालों के लिए बेहतर हो और मैं अपने घरवालों के लिए तुम सबमें ज़्यादा बेहतर हूँ।"
(हदीस : तिरमिज़ी)

समाज में अम्न क़ायम करने और इनसानियत को उसके हुक़ूक़ दिलाने के लिए इनसाफ़ का क़ायम करना ज़रूरी है। जो इनसान जीवन-व्यवस्था को सही रखने के लिए इनसाफ़ की हिमायत करता हो और उसे फ़ैसला करने का मौक़ा मिले तो ग़ैर-जानिबदार होकर पूरी ईमानदारी के साथ इनसाफ़ करे, उसे बेहतरीन इनसान माना जाएगा। नबी (सल्ल॰) का इरशाद है—

"बेहतरीन इनसान वह है जो फ़ैसला करने में अच्छा हो।"
(हदीस : इब्ने-माजा)

इनसानों के कुछ ऐसे काम और किरदार होते हैं जो दूसरे लोगों के दिलों पर गहरा असर छोड़ जाते हैं। उनकी ख़ूबी उनकी पहचान बनकर लोगों को आकर्षित करती है। प्यारे नबी (सल्ल॰) से पूछा गया, "बेहतरीन इनसान कौन है?" आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया—

"जो साफ़ दिल और ज़बान का सच्चा हो।" (हदीस : इब्ने-माजा)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की एक ख़ूबी यह भी थी कि आप बहुत कम शब्दो में पूरी बात कह देते थे। ऊपर दी गई हदीस भी इसी तरह की है। आप (सल्ल॰) ने एक ही वाक्य में अच्छे इनसान की पूरी पहचान वाज़ेह कर

दी है।

"ज़बान का सच्चा" उस इनसान को कहते हैं जो कथनी और करनी, नीयत और इरादे और वादा निभाने आदि के एतिबार से सच्चा है। 'साफ़ दिल' से मुराद वह इनसान है जिसका दिल आईने की तरह साफ़ और उसमें गुनाह और सरकशी न हो। ऐसा इनसान आदर्श समाज के लिए फ़ायदेमन्द होता है। उससे फ़ायदा उठाने के लिए लोग उसके आसपास जमा होते हैं। इस तरह वह लोगों में महबूब यानी प्रिय होता है।

बदतरीन इनसान

इनसान की शख़सियत उसकी आदतों, उसके कामों और उसके किरदार से नुमायाँ होती है। इनसान फ़ितरी तौर पर अपना साथी और दोस्त भी उन्हीं को बनाना पसन्द करता है जो समाज में अच्छे हों और बुरे लोगों से बचना चाहता है। फ़ारिसी ज़बान की एक कहावत मशहूर है जिसका तर्जमा है—

अच्छी संगत तुम्हें अच्छा बनाती है, जबकि बुरी संगत तुम्हें बुरा बनाती है।

और जापानी ज़बान में एक कहावत है जिसका तर्जमा है—

"जब किसी शख़्स का किरदार तुमपर वाज़ेह न हो तो उसके दोस्तों को देखो, इससे उसके स्तर का पता चलता है।"

इसलिए मामूली अक़्ल और समझ रखनेवाला इनसान कभी बुरे लोगों को अपना दोस्त बनाना पसन्द नहीं करता, बल्कि उसकी अश्लील बातों और बुरे कामों से बचने के लिए उससे दूरी बनाए रखने में ही अपनी भलाई महसूस करता है। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ईमानवाला मुहब्बत और उलफ़त करनेवाला होता है और उस शख़्स में कोई ख़ूबी और भलाई नहीं जो न ख़ुद मुहब्बत करे और न लोगों को उससे उलफ़त हो।" (हदीस : मुसनद अहमद)

हदीसों पर ग़ौर करने से मालूम होता है कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने जहाँ अच्छे लोगों की ख़ूबियाँ बयान की हैं वहीं बुरे और नापसन्दीदा लोगों की भी पहचान बता दी है, ताकि ऐसे लोगों से दूर रहा जाए।

इस सिलसिले में एक उसूली बात यह है कि हर वह इनसान जिससे किसी ख़ैर की उम्मीद न हो, यहाँ तक कि उसकी बुराई से भी लोग महफ़ूज़

न हों, उसे बदतरीन इनसान माना जाएगा। क्योंकि ऐसी हालत में वह समाज के फ़साद व बिगाड़ की वजह बनेगा। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तुममें बद्तरीन शख़्स वह है जिससे ख़ैर (यानी भलाई) की उम्मीद न हो और न उसकी बुराई से लोग महफ़ूज़ हों।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

कभी-कभी इनसान किसी बुरे व्यक्ति से मिलता है, मगर वह उसके साथ बेहतर अन्दाज़ से पेश आता है। इससे गुमान होने लगता है कि वह समाज का बेहतरीन इनसान होगा, हालाँकि वह बदतरीन इनसान होता है। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने ऐसे शख़्स की पहचान बता दी है।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) फ़रमाती हैं कि एक शख़्स ने प्यारे नबी (सल्ल॰) से मिलने की इजाज़त चाही। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि उसे आने दो। साथ ही यह भी फ़रमाया कि वह समाज का बुरा इनसान है। जब वह आया तो आप (सल्ल॰) ने उससे नर्म लहजे में बातचीत की। उसके जाने के बाद हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपने तो उसके बारे में ऐसा-ऐसा फ़रमाया था, लेकिन आपने उससे बातचीत में नर्मी बरती।" प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ऐ आइशा! अल्लाह तआला के नज़दीक सबसे बुरा इनसान वह है जिसकी बुराई और अश्लील बातों की वजह से लोग उसे छोड़ दें या उससे दूरी बना लें।" (हदीस : मुस्लिम)

मालूम हुआ कि समाज में ऐसे बदतरीन लोगों की पहचान ज़ाहिर करना जो खुलेआम बेशर्मी और बुराई के काम करते हैं, उसे चुग़ली में शामिल नहीं किया जाएगा। क्योंकि यहाँ उसका मक़सद उनको ज़लील व रुसवा करना नहीं है, बल्कि लोगों को उनकी बुराई से बचाना है। आगे ऐसे इनसानों की कुछ और निशानियों का ज़िक्र किया जा रहा है, ताकि लोग उनसे दूर रहें और अच्छे बुरे को पहचान सकें। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तुम क़ियामत के दिन अल्लाह के नज़दीक लोगों में सबसे

बदतरीन इनसान उन्हें पाओगे जो दोहरा रवैया अपनाते हैं।"
(हदीस : बुख़ारी)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इसको और ज़्यादा स्पष्ट शब्दों में इस तरह बयान किया है—

"तुम लोगों में बदतरीन इनसान उसे पाओगे जो दो मुँह रखता हो, कुछ लोगों के पास एक मुँह लेकर जाता है और कुछ लोगों के पास दूसरा मुँह लेकर जाता है।" (हदीस : मुस्लिम)

ऐसा व्यक्ति सच और झूठ को मिलाकर लोगों में फ़साद और बिगाड़ पैदा करने की कोशिश करता है। इसी वजह से उसे फूट डालने और दुश्मनी फैलानेवाला क़रार दिया गया है। ऐसे लोगों को इनसानियत का दुश्मन और समाज का नासूर समझा जाता है। ऐसा व्यक्ति लोगों की कमज़ोरियों की टोह में लगा रहता है, ताकि उसकी ख़बर दूसरों को दे। इस तरह उनके बीच जुदाई हो जाए। उसका दिल जलन और कीना की आग से जलता रहता है।

इमाम ग़ज़ाली (रह॰) ने दो मुँही बातें बनानेवाले को चुग़लख़ोरी की लत से भी बदतर बताया है। चुग़ली में आदमी सिर्फ़ एक की बात को दूसरे के पास बयान करता है, जबकि यहाँ दोनों ओर दुश्मनी फैलानेवाली बातें पहुँचाई जाती हैं। क़ियामत के दिन ऐसे व्यक्ति के मुँह में आग की दो ज़बानें होंगी। ऐसे शख़्स के बारे में प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"जो शख़्स दुनिया में दो चेहरे रखता होगा, क़ियामत के दिन उसके मुँह में आग की दो ज़बानें होंगी।" (हदीस : अबू-दाऊद)

आप (सल्ल॰) ने ऐसे बदतरीन इनसान की कुछ और वाज़ेह पहचान बताई हैं—

"अल्लाह के बन्दों में सबसे बुरे वे लोग हैं जो चुग़ली करते हैं, मुहब्बत करनेवालों के बीच नफ़रत फैलाते हैं और भले लोगों में ऐब (कमियाँ) तलाश करते हैं।" (हदीस : मुसनद अहमद)

इस हदीस में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने बदतरीन इनसान की तीन निशानियाँ बताई हैं। एक यह कि वह चुग़ली करता है, ताकि एक शख़्स के

ऐब ज़ाहिर होने की वजह से दूसरा उससे बदगुमानी का शिकार हो जाए। ऐसे शख़्स के बारे में एक दूसरी हदीस में आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"चुग़ली करनेवाला जन्नत में नहीं जाएगा।" (हदीस : मुस्लिम)

दूसरा वह शख़्स है जो लोगों के बीच मुहब्बत और भाईचारे को मतभेद और बिखराव के ज़रिए से छिन्न-भिन्न करने की कोशिश करता है।

तीसरा वह शख़्स है जो इस फ़िक्र में लगा रहता है कि किसी नेक आदमी में कोई ऐब (कमी) निकालकर उसे फैला दे, ताकि लोगों में उसकी बदनामी हो। दूसरे शब्दों में वह दूसरे इनसानों की रुसवाई और बदनामी के लिए कोशिश करता रहता है।

तमाम इनसानों का मालिक व ख़ालिक़ अल्लाह है। वही इनसान की ज़रूरतों को पूरी करता है, इसलिए उन्हें उसी के सामने झुकना चाहिए। न कि ख़ुदा के मुक़ाबले किसी दूसरे को ज़रूरत पूरी करनेवाला माना जाए। यह बन्दे की सबसे बड़ी सरकशी होगी। ऐसे शख़्स को भी हदीस में बदतरीन इनसान कहा गया है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"बदतरीन इनसान वे हैं जो क़ब्रों को सजदा करने की जगह बना लेते हैं।" (हदीस : मुसनद अहमद)

इस दुनिया में बहुत-से इनसान ऐसे भी हैं जो दूसरों की दुनिया बनाने में भूल जाते हैं कि वे जो कुछ कर रहे हैं, वह सही है या ग़लत? इस तरह उनकी आख़िरत तबाह व बरबाद हो जाती है। इन लोगों के बारे में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"क़ियामत के दिन अल्लाह के नज़दीक बदतरीन इनसान वह होगा जिसने दूसरों की दुनिया बनाने में अपनी आख़िरत ख़राब कर ली होगी।" (हदीस : इब्ने-माजा)

क़ियामत की निशानियों में से है कि बुराइयाँ फैल जाएँगी और उनका इतना चर्चा होने लगेगा कि लोग बुरे कामों को बुरा नहीं समझेंगे, इस तरह बुरे लोग ज़्यादा हो जाएँगे। इसी बात की भविष्यवाणी करते हुए आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"क़ियामत उस समय आएगी जब सभी इनसान बुरे हो जाएँगे।"

(हदीस : बुख़ारी)

ऊपर दी गई हदीसों में बदतरीन लोगों की पहचान बताई गई है। उनके अलावा झूठ, ग़ीबत, बदकारी और बद-अख़लाक़ी जैसे आमाल करनेवाले लोग भी बदतरीन इनसान हैं, क्योंकि ऐसे लोगों से न भलाई की उम्मीद की जाती है और न उनकी बुराई से लोग महफ़ूज़ रहते हैं।

नर्म लहज़ा और ख़ुशमिज़ाजी

इनसान ख़ुशी और नर्मी को पसन्द करता है। किसी की नागवारी और सख़्ती उसे बिलकुल नहीं भाती। मगर होता यह है कि वह अपनी भावनाओं पर क़ाबू नहीं रख पाता और अपने ख़राब रवैये में बदलाव लाने को तैयार नहीं होता। उसके नतीजे में शिकायत और गुस्से का माहौल बन जाता है। लोग एक-दूसरे से मिलने से कतराने लगते हैं और यह आशंका होती है कि उससे मुलाक़ात ख़ुशी की जगह परेशानी की वजह न बन जाए और बातचीत में सख़्त बात की नौबत न आ जाए।

इस स्थिति से बचने के लिए बातचीत करते समय नर्म व अच्छा अन्दाज़ अपनाना ज़रूरी है। अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा (अलैहि॰) को हिदायत फ़रमाई—

"जाओ दोनों, फ़िरऔन के पास, वह सरकश हो गया है। उससे नर्म बात करना।" (क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, आयतें-43, 44)

इस आयत में अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा (अलैहि॰) और हज़रत हारून (अलैहि॰) को नर्मी से बात करने का हुक्म दिया है। सामनेवाला कितना ही बड़ा सरकश क्यों न हो, मुनासिब यह है कि उससे आसान, मीठी और नर्म बात की जाए। तभी उससे सुधार की उम्मीद की जा सकती है। इसी वजह से अल्लाह तआला ने आगे फ़रमाया है—

"ताकि वह नसीहत हासिल करे या डरे।"

(क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, आयत-44)

प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ख़ुशख़बरी सुनाओ, नफ़रत मत फैलाओ, आसानी पैदा करो, मुश्किलें न पैदा करो।" (हदीस : मुस्लिम)

कभी-कभी इनसान नादानी में किसी व्यक्ति से ऐसी बात कह देता है

जो सीधे उसके दिल पर लगती है, और फिर वह घाव कभी नहीं भरता। अरबी का एक मुहावरा है जिसका तर्जमा है—

"ज़बान से लगा घाव शरीर पर लगे घाव से अधिक गहरा होता है।"

याद रहे कि किसी को तकलीफ़ पहुँचाना दीन इस्लाम में हराम है। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"मुसलमान वह है जिसकी ज़बान और हाथ से दूसरे इनसान महफ़ूज़ रहें।" (हदीस : बुख़ारी)

अभी तक किसी ऐसी मशीन की खोज नहीं हुई है जिससे सामनेवाले के दिल का हाल जाना जा सके। मगर इनसान का चेहरा बता देता है कि वह ख़ुश है या नाराज़, और यह कि वह अपने मिलनेवालों का सच में भला चाहनेवाला है या किसी लालच व लोभ में पड़ा हुआ है। शैख़ सादी (रह॰) ने फ़ारिसी में कहा था, जिसका तर्जमा है—"जब तक इनसान बात नहीं करता है, उस वक़्त तक उसका ऐब और हुनर छुपा रहता है।" यानी बातचीत का अन्दाज़ इनसान की शख़सियत को खोलकर रख देता है।

एक बार प्यारे नबी (सल्ल॰) ने सहाबा (रज़ि॰) से फ़रमाया, "क्या मैं तुम्हें उस शख़्स के बारे में न बता दूँ जिसपर जहन्नम की आग हराम कर दी गई है?" सहाबा (रज़ि॰) ने कहा, "क्यों नहीं ऐ अल्लाह के रसूल! आप ज़रूर बताइए। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह ने जहन्नम की आग हराम कर दी है हर उस शख़्स पर जो ख़ुशमिज़ाज हो, नर्म-मिज़ाज हो, नर्मी को पसन्द करता हो, और लोगों से क़रीब रहनेवाला हो।" (हदीस : मुसनद अहमद)

इस्लाम इनसान को हर हाल में सब्र और शुक्र के साथ रहना सिखाता है। उसे चाहिए कि परेशानियों के बावजूद अपने दुख को मुस्कुराहटों में छुपाने का आदी बने। उसका यह अमल उसे ख़ुद भी ख़ुश रखेगा और दूसरों को भी ख़ुश रहने की प्रेरणा दे सकेगा। उसका यह काम शुक्रगुज़ारी में गिना जाएगा, जिसपर अल्लाह ने और ज़्यादा देने का वादा किया है।

चेहरे की इस मुस्कुराहट का मतलब है किसी से ख़ुशदिली के साथ मिलना, चेहरे का खिला-खिला रहना। यह नुस्ख़ा प्यारे नबी (सल्ल॰) का बताया हुआ है। आप (सल्ल॰) अच्छी बातों को पसन्द करते थे और किसी भी नेक काम को मामूली नहीं समझते थे। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"किसी भी भलाई को हरगिज़ कमतर न जानो, चाहे तेरा अपने भाई से ख़ुशदिली से मिलना ही हो।" (हदीस : मुस्लिम)

इस हदीस से साफ़ मालूम होता है कि इस्लाम में हर अच्छे काम की अहमियत है। किसी भी नेक काम को छोटा समझकर छोड़ देना सही नहीं है। ख़ुशदिली और मुस्कुराहट के साथ मिलना एक अच्छा काम है, चाहे लोगों की नज़र में इसकी कोई ख़ास अहमियत न हो। मगर अख़लाक़ी एतिबार से यह एक अच्छी ख़ूबी है और यह आपसी मुहब्बत को ज़ाहिर करता है। इस्लाम ने इसको बड़ी अहमियत दी है। नबी (सल्ल॰) के चेहरे मुबारक पर हमेशा मुस्कुराहट रहती थी। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-हारिस (रज़ि॰) कहते हैं–

"मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से ज़्यादा मुस्कराते हुए किसी को नहीं देखा।" (हदीस : तिरमिज़ी)

किसी से मिलते वक़्त चेहरे पर मुस्कुराहट यह साबित करती है कि वह इनसान अच्छे अख़लाक़वाला है। यह ख़ूबी रखनेवाला इनसान अपने दूसरे भाई के दिल में ख़ुशी की लहर पैदा करता है। अगर उसके पास देने के लिए कोई चीज़ न हो तब भी उसका मुस्कुराहट के साथ मिलना ख़ुद एक सदक़ा है। कभी-कभी चेहरे की मुस्कुराहट मरीज़ के लिए दवा साबित होती है। इसलिए बहुत-से डॉक्टरों का ख़याल है कि मरीज़ से हाल-चाल पूछते वक़्त मुस्कुराहट उसकी तबीयत की बहाली की वजह होती है। यह एक तरह का तोहफ़ा या बख़शिश है। लोगों को आमतौर पर इसकी समझ नहीं होती।

हमारे बुज़ुर्गों का तरीक़ा रहा है कि वे लोगों के साथ ख़ुशदिली से मिलते और नर्म अन्दाज़ में बात करते थे। यही वजह है कि लोग उनसे मिलने के लिए बेताब रहते थे। जलीलुल-क़द्र सहाबी हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर

(रज़ि॰) फ़रमाते हैं–

"नेकी आसान चीज़, ख़ुशदिली और नर्म ज़बान का नाम है।"

(हदीस : बैहक़ी)

इसलिए ज़रूरी है कि इनसान अपनी बातचीत में नर्मी और मिठास पैदा करे। यह तरीक़ा दिल की सख़्ती को दूर कर देगा और उसकी शख़सियत में निखार पैदा करेगा। हँसता हुआ चेहरा मोती से ज़्यादा चमकदार और रौशन सुबह से ज़्यादा दिलकश होता है। साथ ही यह ख़ूबी दिल की सफ़ाई को भी ज़ाहिर करती है।

बातचीत के आदाब में से यह है कि इनसान जहाँ अपने सामनेवाले से नर्म और मीठे अन्दाज़ में बात करे, वहीं वह अपने चेहरे पर मुस्कुराहट भी रखे। इसके बिना बातचीत का असरदार होना मुश्किल है। अगर हम अपनी ज़िन्दगी में इस चीज़ को अपनाएँगे तो उसके फ़ायदे ज़रूर देखेंगे। यही इज़्ज़त क्या कम है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की पैरवी होगी जो हमारे लिए बड़े गर्व की बात है। इस रवैये से अल्लाह के अच्छे बन्दों से मुहब्बत पैदा होगी जो ख़ुदा से मुहब्बत की निशानी है। लोग ख़ुशदिल इनसान को पसन्द करते हैं और उनकी तरफ़ खिंचे चले आते हैं। यह एक दाई (इस्लाम की दावत देनेवाले) की सबसे बड़ी ख़ूबी और उसके बेहतरीन किरदार की दलील है।

हया (शर्म)

इनसान के अन्दर फ़ितरी तौर पर 'हया' (शर्म) पाई जाती है। यह एक ऐसा पैमाना है जिससे उसकी अच्छाई और बुराई को जाँचा और परखा जा सकता है। इसी की बुनियाद पर वह अमल करता है और अपनी ज़िन्दगी को इज़्ज़तदार बनाता है। हया इनसान का ज़ेवर है जिससे उसकी शख़सियत में निखार पैदा होता है और उसके आत्म-सम्मान की हिफ़ाज़त होती है। इसी वजह से उसको यह बात नागवार गुज़रती है कि कोई उसे बुरा समझे या उसकी इज़्ज़त को नुक़सान पहुँचाए। मगर जब उसके अन्दर से हया निकल जाती है तो उसमें अच्छे बुरे की कोई तमीज़ बाक़ी नहीं रह जाती। हया न हो तो शैतान इनसान पर पूरी तरह हावी हो जाता है। फिर उसके जी में जो भी आता है, करता चला जाता है। फ़ारिसी की कहावत मशहूर है जिसका तर्जमा है, "बेहया हो जा तो जो जी में आए कर।" बेहयाई से समाज संगीन समस्याओं से दोचार हो जाता है। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"हर दीन का एक मिज़ाज होता है और इस्लाम का मिज़ाज हया है।" (हदीस : इब्ने-माजा)

हया ईमान का वह हिस्सा है जो इनसान को तहज़ीबवाला व अच्छे और बुरे में फ़र्क़ करनेवाला बनाता है।

क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"ऐ आदम की औलाद! हमने तुम्हारे लिए लिबास उतारा है कि तुम्हारे जिस्म के गुप्त अँगों को छुपाए और तुम्हारे जिस्म की हिफ़ाज़त और ख़ूबसूरती का ज़रिआ भी हो और बेहतरीन लिबास तक़वा का लिबास है।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-26)

हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) फ़रमाते हैं कि इस आयत में तक़वा के लिबास के मानी हया के हैं। हया के बारे में बहुत-सी हदीसें मौजूद हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इसकी अहमियत बताते हुए कहा—

"हया ईमान का हिस्सा है।" (हदीस : मुस्लिम)

इससे मालूम हुआ कि मुसलमान बेहया और बेशर्म नहीं हो सकता। वह

कभी पसन्द नहीं करेगा कि लोग उसे बेशर्म या बेहया समझें। किसी भी बुरे काम को करने से पहले उसकी हया उसे रोकेगी। इसी वजह से आप (सल्ल०) ने फ़रमाया है—

"हया ख़ैर (भलाई) ही लाती है।" (हदीस : बुख़ारी)

हया की अहमियत को देखते हुए आप (सल्ल०) ने आगे फ़रमाया—

"बेशक हया और ईमान एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। अगर उनमें से कोई एक ख़त्म हो जाए तो दूसरा भी ख़त्म हो जाता है।"
(हदीस : मिशकात)

जब किसी इनसान के अन्दर से हया ख़त्म हो जाए तो समझ लेना चाहिए कि अल्लाह ने उसकी बरबादी का फ़ैसला कर लिया है। प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"अल्लाह जब किसी बन्दे को बरबाद करने का इरादा करता है तो उससे उसकी हया छीन लेता है फिर उसमें अमानतदारी बाक़ी नहीं रहती, वह ख़यानत करनेवाला हो जाता है, फिर वह अल्लाह की रहमत से दूर हो जाता है।" (हदीस : इब्ने-माजा)

हया से महरूम हो जाने के बाद इनसान हर तरह का काम करना शुरू कर देता है। उसे ख़राब-से-ख़राब काम करने में भी हिचकिचाहट नहीं होती। प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"अगर तुममें हया न हो तो जो जी में आए करो।"
(हदीस : बुख़ारी)

यानी, बेहयाई व बेशर्मी से इनसान की अक़्ल पर परदा पड़ जाता है और उसमें कोई समझ बाक़ी नहीं रहती। हया अल्लाह, उसके रसूल और नेक लोगों की ख़ूबी है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"अल्लाह तआला हया और परदेवाला है और हया और परदापोशी को पसन्द करता है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

एक-दूसरी हदीस में नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"बेशक तुम्हारा रब बड़ा हयावाला और दानशील है। उसे अपने बन्दे के बारे में इस बात से शर्म आती है कि बन्दा उसके सामने हाथ फैलाए और वह उसे नामुराद वापस कर दे।"

(हदीस : अलबानी शरहुत्तहाविय्यह)

नबी (सल्ल॰) ने हया को रसूलों की सुन्नत बताया है और फ़रमाया—

"चार चीज़ें रसूलों की सुन्नत है : हया, ख़ुशबू लगाना, मिसवाक करना और निकाह करना।" (हदीस : तिरमिज़ी)

प्यारे नबी (सल्ल॰) बहुत ही बाहया थे। एक सहाबी (रज़ि॰) कहते हैं—

"नबी (सल्ल॰) के अन्दर एक नौजवान लड़की से भी ज़्यादा हया पाई जाती थी।" (हदीस : बुख़ारी)

जिसके अन्दर हया होती है, वह सबका महबूब होता है। इसी लिए कहा जाता है—

"चेहरे की ज़िन्दगी हया है, जैसे पौधे की ज़िन्दगी पानी है।"

सहाबा (रज़ि॰) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की संगत पाई और आप (सल्ल॰) की तरबियत ने उन्हें भी हया का पैकर बना दिया था। कुछ सहाबा (रज़ि॰) इस मामले में बहुत नुमायाँ थे। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने हज़रत उसमान ग़नी (रज़ि॰) के बारे में फ़रमाया—

"इनमें सबसे ज़्यादा हया करनेवाले उसमान (रज़ि॰) हैं।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत उमर (रज़ि॰) का कहना है—

"जिस इनसान के अन्दर हया में कमी आ जाए उसकी परहेज़गारी में भी कमी आ जाती है। और जिसकी परहेज़गारी में कमी आ जाए उसका दिल मुर्दा हो जाता है।"

(अल-मक़ासिद अल-हसना, पेज-373)

उमर-बिन-उतबा-बिन-फ़रक़द् जो एक बड़े ताबिई हैं, एक बार मुस्लिम सैनिकों के बीच रात में नमाज़ के लिए खड़े हुए कि अचानक एक दरिन्दे ने हमला किया। दूसरे सैनिक भाग खड़े हुए, मगर वे खड़े रहे और नमाज़

जारी रखी। हैरतअंगेज़ तौर पर दरिन्दे ने उनको नुक़सान नहीं पहुँचाया। बाद में जब सैनिक वापस आए और उन्होंने पूछा कि आप क्यों नहीं भागे तो उन्होंने कहा, "मैं नमाज़ में था और मुझे अल्लाह से शर्म आई कि उसके सामने खड़े होते हुए भी उससे डरने के बदले दरिन्दे से डरूँ।"

उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि॰) की हया का यह हाल था कि उनके हुजरे में हज़रत उमर (रज़ि॰) के दफ़न होने से पहले वे उसमें बिना परदे के दाख़िल हो जाती थीं, इसलिए कि वहाँ उनके शौहर यानी अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) और उनके अब्बा जान हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) दफ़न थे। मगर जब हज़रत उमर (रज़ि॰) उसी हुजरे में दफ़न किए गए तो वे उसमें जाते वक़्त अपने ऊपर चादर डाल लेती थीं। यह सब हज़रत उमर (रज़ि॰) से हया की वजह से था।

मौजूदा दौर पर नज़र डाली जाए तो जितना नंगेपन को बढ़ावा, मूल्यों का पतन और बेहयाई का रिवाज हुआ है उससे साफ़ ज़ाहिर है कि हमारे समाज से हया ख़त्म होती जा रही है। इसका नतीजा यह है कि इनसानों में वह तमीज़ और समझ नहीं है कि वह किसी बुरी चीज़ को बुरा कह सकें। उन्हें सब कुछ अच्छा ही दिखाई देता है। बच्चियाँ नंगी पोशाक पहनती हैं और अपने माँ-बाप के सामने घर से बाहर निकल जाती हैं। माँ-बाप जानते हैं कि यह इस्लाम के ख़िलाफ़ है, मगर उन्हें नहीं रोकते, बल्कि उसके जाइज़ ठहराने के लिए दलील देते हैं कि यह इस दौर का फ़ैशन है, या फिर यह कि आज के बच्चे मानते ही नहीं, वग़ैरा। नतीजे में छेड़छाड़, बदकारी और बदतमीज़ी के मामले सामने आते हैं। और समाज तबाह होता है। और इस तरह की घटनाएँ आए दिन अख़बारों की शोभा बनती हैं।

इनसान को जो चीज़ बे-हया व बे-शर्म बनाती है वह उसकी नफ़सानी ख़ाहिशें और दुनिया की मुहब्बत है, जो ईमान को दीमक की तरह चाट जाती है। इसलिए हमें अपना जायज़ा लेना चाहिए और हर उस काम से बचना चाहिए जो हया, इज़्ज़त और सम्मान के ख़त्म होने की वजह बने। तभी हमारा ईमान मज़बूत होगा और हम अल्लाह को मुँह दिखाने के क़ाबिल होंगे।

ज़बान का सही इस्तेमाल

समाज में फ़साद और बिगाड़ की एक अहम वजह ज़बान का बेजा और ग़लत इस्तेमाल है। ज़बान यूँ तो इनसान के शरीर का एक छोटा-सा हिस्सा है, मगर उसके नुक़सानात बड़े भयानक होते हैं। अरबी की एक मशहूर कहावत है जिसका तर्जमा–

"ज़बान का साइज़ छोटा होता है, लेकिन उसके गुनाह बहुत भारी होते हैं।"

ज़बान से इनसान न केवल दूसरों को तकलीफ़ और परेशानी में डालता है, बल्कि ख़ुद भी बहुत-सी मुसीबतों से दोचार होता है। इनसानी ज़िन्दगी पर इसका गहरा असर पड़ता है। अगर इसका सही इस्तेमाल हो तो इनसान सम्मानित और अच्छे किरदार का समझा जाता है। और अगर इसके इस्तेमाल में बे-परवाही से काम लिया जाए तो इनसान को इसकी बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ती है और वह समाज में बे-इज़्ज़त और रुसवा हो जाता है। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का इरशाद है–

"आदमी जब सुबह उठता है तो जिस्म के सारे अँग ज़बान के सामने लाचारी का इज़हार करते हैं और कहते हैं कि हमारे मामले में अल्लाह से डर, क्योंकि हम तेरे साथ जुड़े हुए हैं। अगर तू ठीक रही तो हम भी ठीक रहेंगे और अगर तूने टेढ़ इख़्तियार की तो हम भी टेढ़े हो जाएँगे।" (हदीस : तिरमिज़ी)

हर एक काम की ख़ूबसूरती यह है कि उसे सन्तुलित तरीक़े से किया जाए। इसमें कमी-बेशी करना मानो उस काम में बिगाड़ पैदा करना और ख़ुद को मुसीबत में फँसाना है। इसलिए बेहतर यही है कि इनसान अपनी बात सन्तुलित तरीक़े से करे और बातचीत के आदाब को ध्यान में रखते हुए अपनी ज़बान को क़ाबू में रखे। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने बातचीत के बारे में एक आम क़ायदा यह बताया है–

"जो शख़्स अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता है, वह अच्छी बात कहे या ख़ामोश रहे।" (हदीस : बुख़ारी)

बातचीत के आदाब में से है कि ऐसी बातों से बचना चाहिए जो बे-फ़ायदा हों और अनुचित बात से परहेज़ करना चाहिए। जैसा कि अरबी में एक कहावत है जिसका तर्जमा है—

"हर बात का एक मुनासिब वक़्त होता है।"

जब बातचीत की जाए तो इसका ख़याल रखा जाए कि जो बात कही जा रही है वह सुननेवाले की ज़रूरत है या नहीं या यह कि उसपर इस बातचीत का क्या असर होगा। कहा जाता है कि "पहले तोलो फिर बोलो" ताकि पता चले कि इस बात का इस जगह पर क्या वज़न है? और उसकी क्या हैसियत है?

ज़्यादा बात करने के बजाय छोटी, दलील के साथ और साफ़ बात करनी चाहिए। अरबी में एक कहावत है जिसका तर्जमा है—

"बेहतरीन बात वह है जो छोटी और दलील के साथ हो।"

आमतौर पर इनसान जब बात करता है तो सुननेवाले के वक़्त का ख़याल नहीं रखता और ग़ैर-ज़रूरी बातें करके उसे उकताहट में डाल देता है। इस तरह उसका वक़्त भी बरबाद होता है और बात भी असरदार नहीं रहती।

इनसान अपनी ज़बान की लापरवाही की वजह से बहुत-से राज़ खोलकर रख देता है जो कि अमानत का दर्जा रखते हैं। इसके नतीजे में उसे ग़ीबत, चुग़ली और किसी की टोह में लगकर इधर की बात उधर करने की आदत पड़ जाती है। जब उसकी यह बात समाज में उजागर होती है तो वह किसी को मुँह दिखाने के लायक़ नहीं रह जाता और न लोग उसपर भरोसा करते हैं। इस तरह उनकी निगाहों में उसकी क़द्र व क़ीमत घट जाती है। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिसने ख़ामोशी अपनाई वह निजात पा गया।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

मालूम हुआ कि अगर परेशानियों से बचना है और अपने मक़सद में कामयाब होना है तो बहुत ज़्यादा बात करने से बचते हुए ख़ामोशी इख़्तियार की जाए।

हकीम लुक़मान ने अपने बेटे को नसीहत करते हुए कहा था—

"अगर बोलना चाँदी है तो चुप रहना सोना है।"

अगर किसी की तारीफ़ करनी है या उसका हौसला बढ़ाना है तो तारीफ़ में हद से आगे नहीं बढ़ना चाहिए। क्योंकि ऐसी हरकत दिखावा या चापलूसी के दायरे में आती है, जो इनसान को शोभा नहीं देती। यही हाल निन्दा का है, क्योंकि उसमें भी हद से गुज़रना सख़्ती और बदले की भावना को जन्म देता है, जबकि इनसान इनसान की हैसियत से इज़्ज़त व एहतिराम के क़ाबिल है, इसलिए उसके बुरे काम को भी उसी हद तक बुरा कहना चाहिए जो उसके आत्म-सम्मान (ख़ुद्दारी) को ठेस न पहुँचाए, वरना बदले में वह और ज़्यादा फ़साद और बिगाड़ का सबब बनेगा।

इनसान की ज़बान का ताल्लुक़ दिल से बहुत गहरा होता है। पहले दिल में ख़याल आता है, फिर उसका इज़हार ज़बान से होता है। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "बन्दे का ईमान उस वक़्त तक सही न होगा, जब तक उसका दिल सही न रहे और उसका दिल उस वक़्त तक सही नहीं होगा जब तक उसकी ज़बान सही न हो।" (हदीस : मुसनद अहमद)

इसलिए आदमी को चाहिए कि वह बातचीत के दौरान गन्दी व ख़राब बात कहने से बचे, क्योंकि यह उसके रुतबे और शान के ख़िलाफ़ है। ज़बान की अहमियत को देखते हुए अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "लोगों को जहन्नम में उनके मुँह के बल उनकी ज़बानों से कही हुई बातों की बुनियाद पर ही डाला जाएगा।" (हदीस : तिरमिज़ी)

एक मुसलमान को हर वक़्त यह याद रखना चाहिए कि वह जो कुछ अपनी ज़बान से बोलता है वह अल्लाह तआला के यहाँ महफ़ूज़ कर लिया जाता है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"कोई बात उसकी ज़बान से नहीं निकलती जिसे लिखने के लिए उसके पास एक निरीक्षक (निगरानी करनेवाला) मौजूद न हो।"

(क़ुरआन, सूरा-50 क़ाफ़, आयत-18)

इनसान को चाहिए कि जब भी कोई बात करे तो पहले यह सोच ले कि वह क्या कह रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं कि वह कोई ऐसी बात कह रहा है जो अल्लाह के अज़ाब की वजह बन जाए, जिसकी वजह से आख़िरत में उसे रुसवाई का सामना करना पड़े। इसी के बारे में प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"एक शख़्स अपने मुँह से अल्लाह तआला की रज़ामन्दी (ख़ुशनूदी) की कोई बात निकालता है। वह उसे कोई अहमियत नहीं देता, लेकिन अल्लाह तआला उसकी वजह से उसके दर्जे व रुतबे को बढ़ा देता है। एक दूसरा शख़्स अपने मुँह से अल्लाह की नाराज़गी की कोई बात कहता है। उसे वह कुछ अहमियत नहीं देता, लेकिन अल्लाह तआला उसकी वजह से उसे जहन्नम में डाल देगा।"

(हदीस : बुख़ारी)

ज़बान के बारे में सहाबा (रज़ि॰) बहुत सावधानी बरतते थे। वे उसके ख़तरों से अच्छी तरह वाक़िफ़ थे। उनको हमेशा यह फ़िक्र सताती रहती थी कि ज़बान से कोई ग़लत बात न निकल जाए। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) अपनी ज़बान पकड़कर फ़रमाया करते—

"इसने मुझे बहुत-से मौक़ों पर हलाकत में डाला है।"

(मज्मउज़्ज़वाइद)

ज़बान अल्लाह की दी हुई बहुत बड़ी नेमत है, जिससे उसकी इताअत व फ़रमाँबरदारी और गुनाह दोनों ही हो सकते हैं। उसी से ईमान का इज़हार होता है और कुफ़्र का भी। यह इनसान के विचारों और ख़यालों के इज़हार करने का ज़रिआ है। अच्छाई और बुराई को फैलाने में इसकी अहम भूमिका है। जिसने उसका सही और ज़रूरत के मुताबिक़ इस्तेमाल किया और उसपर शरीअत की लगाम डाल दी तो वह कामयाब हो गया और जिसने उसकी

लगाम ढीली कर दी और उसे आज़ाद छोड़ दिया तो शैतान उसपर हावी होकर उसे अपनी मर्ज़ी का शिकार बना लेता है और वह अपनी ज़बान के ग़लत इस्तेमाल की वजह से जहन्नमी हो जाता है। इसी वजह से प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है–

> "जो शख़्स मुझे दोनों जबड़ों के बीच की चीज़ (ज़बान) और दोनों पैरों के बीच की चीज़ (शर्मगाह, गुप्तांग) की ज़मानत देगा, मैं उसे जन्नत की ज़मानत देता हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

ज़बान की ज़मानत का मतलब है कि आदमी कभी अपनी ज़बान से ऐसी कोई बात न निकाले जो फ़साद या बिगाड़ की वजह बने। उसके लिए बेहतर यही है कि वह अपनी ज़बान को हमेशा अल्लाह के ज़िक्र से तर रखे और उससे अच्छी और मीठी बातें करे, ताकि दूसरों पर उसकी शख़्सियत का अच्छा और गहरा असर पड़ सके।

दुनिया की मुहब्बत के बुरे प्रभाव

एक ईमानवाले की शान यह है कि समाज और माहौल चाहे जितना भी ख़राब हो, मगर वह नेकी और भलाई के कामों में आगे रहे। वह इतना बुलन्द किरदार और साहसी हो कि उसे मुख़ालिफ़ माहौल डगमगा न सके। वह अपने अन्दर किसी ऐसी कमज़ोरी को जगह न दे जिसकी वजह से मुख़ालिफ़ उसे अपना शिकार बना लें। ज़रूरी है कि एक मुसलमान दुनिया की मुहब्बत, अनुचित (ना-मुनासिब) ऐशो-आराम और इच्छाओं को दिल से निकाल कर सादा ज़िन्दगी गुज़ारे। ऐसा शख़्स समाज के लिए बेहद फ़ायदेमन्द और क़ौम व मिल्लत के लिए बहुत कारामद साबित होता है। जो काम भी वह करता है, उसमें उसकी नीयत साफ़ होती है। वह अपने निजी फ़ायदों से ऊपर उठकर बग़ैर किसी लालच के ख़िदमत अंजाम देता है। अल्लाह ऐसे मुख़लिस बन्दों से बहुत ख़ुश होता है और उन्हें कामयाबियाँ अता करता है।

इसके बरख़िलाफ़ अगर इनसान दुनिया की मुहब्बत में घिरकर उसके ऐशो-आराम का दीवाना हो जाए, तो उसके अन्दर कमज़ोरी आ जाती है, जो उसकी हिम्मत और हौसले को ख़त्म कर देती है। वह अपने मिशन पर क़ायम नहीं रह पाता। धीरे-धीरे वह अल्लाह का नाफ़रमान हो जाता है। उसका आत्म-सम्मान (ख़ुद्दारी) ख़त्म हो जाता है और एक अच्छे इनसान की हैसियत से उसकी पहचान ख़त्म हो जाती है। लोग उसके पास जाना भी पसन्द नहीं करते। यहाँ तक कि वह इनसानियत के निचले स्तर से भी नीचे गिर जाता है। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने इस पहलू को समझाने के लिए फ़रमाया—

> "बहुत जल्द एक ऐसा वक़्त आएगा जब क़ौमें तुमपर टूट पड़ेंगी, जिस तरह खानेवाले एक-दूसरे को खाने के प्याले की तरफ़ बुलाते हैं।" एक शख़्स ने कहा, "क्या उस ज़माने में ऐसा हमारी कम

तादाद की वजह से होगा?" आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया, "नहीं, तुम तो उस ज़माने में बहुत बड़ी तादाद में होगे, लेकिन तुम्हारी हैसियत घास के उन तिनकों की तरह होगी जो दरिया और सैलाब के झाग के साथ मिला हुआ होता है। अल्लाह तुम्हारे दिलों में 'वहन' डाल देगा।" एक शख़्स ने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! 'वहन' क्या है?" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "दुनिया की मुहब्बत और मौत से नफ़रत।" (हदीस : अबू-दाऊद)

ज़िन्दा क़ौम वह होती है जिसे अपनी ज़िन्दगी की परवाह कम और अपने मक़सद की फ़िक्र ज़्यादा होती है। उसके हर सदस्य को पूरा यक़ीन होता है कि मौत किसी भी वक़्त आ सकती है। इसलिए वह उस ज़िम्मेदारी के अदा करने की पूरी कोशिश करता है जो अल्लाह तआला ने उसपर 'ख़ैरे-उम्मत' का एक सदस्य होने की हैसियत से डाली है। वह किसी के रोब व दबाव में नहीं आता। दुनिया की चमक-दमक को वह दूसरा दर्जा देता है। उसे वह आदमी ज़िन्दगी का मक़सद नहीं समझता। उस मौत को जो अल्लाह की पैरवी करते हुए आए अपने लिए फ़ख़्र की बात समझता है।

ईमानवालों के इसी संकल्प और इरादे को कमज़ोर करनेवाले शैतान के कुछ ख़तरनाक हथियार हैं। उनमें से एक दुनिया की मुहब्बत है जो उसको आख़िरत से ग़ाफ़िल कर देती है। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"बूढ़े शख़्स का दिल दो चीज़ों के मामले में जवान होता है : एक दुनिया की मुहब्बत और दूसरी बहुत ज़्यादा आरज़ूएँ।"
(हदीस : बुख़ारी)

एक ईमानवाले को यक़ीन होता है कि दुनिया ख़त्म हो जानेवाली है, और उसे एक दिन ख़त्म होना है। अस्ल ज़िन्दगी आख़िरत की ज़िन्दगी है जहाँ अल्लाह के सामने पेश होकर हर इनसान को अपने कामों का हिसाब देना है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"आख़िरत की ज़िन्दगी बेहतर है और हमेशा बाक़ी रहेगी।"
(क़ुरआन, सूरा-87 आला, आयत-17)

दुनिया का हर इनसान इस बात को अच्छी तरह जानता है कि यहाँ हर पैदा होनेवाला सिर्फ़ कुछ दिनों की ज़िन्दगी लेकर आया है। उसे कुछ पता नहीं कि कब उसकी सांस रुक जाएगी और कब वह दुनिया से चला जाएगा।

जो आदमी दुनिया की मुहब्बत में गिरफ़्तार हो जाता है, वह ऐशो-आराम में डूब जाता है। ऐशो-आराम की ज़िन्दगी गुज़ारना मुसलमानों का तरीक़ा नहीं। ऐसे इनसान को अल्लाह तआला पसन्द नहीं करता। हक़ीक़त में ऐशो-आराम की ज़िन्दगी गुज़ारनेवाले अल्लाह के बन्दे नहीं, बल्कि दुनिया के बन्दे होते हैं। इसी बुनियाद पर प्यारे नबी (सल्ल॰) ने जब हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) को यमन का गवर्नर बनाकर भेजा तो फ़रमाया—

> "ऐशो-आराम में पड़ने से ख़ुद को बचाना। क्योंकि अल्लाह के (प्यारे) बन्दे ऐशो-आराम करनेवाले नहीं होते।"
>
> (हदीस : मुसनद अहमद)

एक शख़्स को प्यारे नबी (सल्ल॰) की तरफ़ से गवर्नर बनाकर ऐसी जगह भेजा जा रहा है जहाँ दुनिया की लज़्ज़त और ऐशो-आराम का सारा सामान मौजूद है। उसे इस्लाम का तरीक़ा बताया जा रहा है कि तुम दूसरे दुनियापरस्त हाकिमों की तरह दुनियादारी में न फंस जाना कि अपनी ज़िम्मेदारी से ग़ाफ़िल हो जाओ।

अल्लाह के बन्दे झूठी शान-शौकत से बचते हैं। उनके अन्दर ज़िम्मेदारी का एहसास कूट-कूटकर भरा होता है। दुनिया की मुहब्बत अचानक किसी दिल में पैदा नहीं हो जाती, शुरू में उसका लालच पैदा होता है। फिर इनसान आख़िरत को किनारे करते हुए उसमें गुम हो जाता है। इमाम क़ुरतुबी (रह॰) ने इस सिलसिले में फ़रमाया है—

> "यह (दुनिया की मुहब्बत) एक संगीन और जानलेवा बीमारी है। जिस दिल में यह घर कर लेती है, उसका मिज़ाज बिगड़ जाता है और उसका इलाज मुश्किल हो जाता है। यह बीमारी किसी तरह उसका पीछा नहीं छोड़ती। कोई दवा काम नहीं करती। डॉक्टर

उसके इलाज से मायूस हो जाते हैं और हकीम उसे अच्छा करने में बेबस दिखाई देते हैं।" (तफ़सीरुल-क़ुरतुबी, हिस्सा-10, पेज-3)

जब इनसान के दिल में दुनिया की मुहब्बत बैठ जाती है तो वह लम्बी उम्र और ज़्यादा माल की इच्छा करने लगता है। अल्लाह तआला ने इसे यहूदियों की बुरी ख़सलत क़रार देते हुए कहा है–

"तुम उन्हें सब लोगों से बढ़कर ज़िन्दगी का लोभी (हरीस) पाओगे, यहाँ तक कि वे इस बारे में शिर्क करनेवालों से भी बढ़े हुए हैं। उनका तो हर एक आदमी यह चाहता है कि किसी तरह वह हज़ार साल जिए, जबकि अगर उसे यह लम्बी उम्र मिल भी जाए, तो भी यह उसे अल्लाह के अज़ाब से नहीं बचा सकती। अल्लाह देख रहा है जो कुछ वे कर रहे हैं।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-96)

जब इनसान दुनिया का दीवाना हो जाता है तो अंधा होकर रह जाता है। उसे अच्छा बुरा कुछ दिखाई नहीं देता। उसका दिल पत्थर की तरह सख़्त हो जाता है। उसे अपने फ़ायदे के अलावा किसी से कोई सरोकार नहीं रहता। वह ऐशो-आराम के दलदल में ऐसा फँसता है कि फिर उससे निकलना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। मौत की याद उसे इस दलदल से निकाल सकती थी, मगर वह उसे भुला बैठता है। दुनिया की चमक-दमक में खोकर बेकार की बातों में उलझ जाता है। इस तरह वह लगातार धोखे में रहता है। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"अच्छी तरह जान लो, दुनिया की ज़िन्दगी तो बस एक खेल और तमाशा है और दिखावे की साज-सज्जा और तुम्हारा आपस में एक-दूसरे पर बड़ाई जताना, और माल और औलाद में एक-दूसरे से बढ़ जाने की कोशिश करना है। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे एक बारिश हो गई तो उससे पैदा होनेवाली घास-फूस ने किसान का दिल मोह लिया। फिर वही खेती पक जाती है, और तुम उसे देखते हो कि वह पीली हो गई। फिर वह भूसा बनकर रह जाती है, जबकि आख़िरत वह जगह है जहाँ सख़्त अज़ाब है और अल्लाह की माफ़ी

और ख़ुशनूदी है। दुनिया की ज़िन्दगी तो सिर्फ़ धोखे की चीज़ के सिवा कुछ नहीं।" (क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-20)

दुनिया की मुहब्बत इनसान के अन्दर से ख़ुदा की राह में ख़र्च करने और क़ुरबानी का जज़्बा ख़त्म कर देती है। फिर वह इजतिमाई ज़िन्दगी से हटकर निजी फ़ायदों को हासिल करने की कोशिशों में ज़िन्दगी गुज़ारने लगता है। दूसरों के लिए उसके दिल में नर्मी या हमदर्दी बाक़ी नहीं रहती। वह इस बात से ग़ाफ़िल हो जाता है कि वह जिस जगह रह रहा है उसका पड़ोसी किस हाल में है, समाज-सेवा के दूसरे काम अंजाम देना तो दूर की बात है, जबकि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"वह शख़्स मुझपर ईमान नहीं रखता जो ख़ुद तो पेट भरकर खाए और मज़े की नींद ले और उसका पड़ोसी भूखा हो, जबकि वह इस बात को जानता हो।" (हदीस : तबरानी)

कितनी अजीब बात है कि इनसान इस दुनिया में इतना मस्त रहता है और दुनिया की मुहब्बत में इतना मग्न रहता है कि उसे कुछ एहसास नहीं कि वह दिन, महीने और साल खो रहा है। इतना ग़ाफ़िल है कि इस ख़त्म हो जानेवाली ज़िन्दगी के बदले आख़िरत की ज़िन्दगी को भुला रहा है जो बाक़ी रहनेवाली है। क़ुरआन में अल्लाह कहता है—

"हमने तुम्हें जो कुछ दिया है उसमें से ख़र्च करो इससे पहले कि तुममें से किसी को मौत आ जाए और उस समय वह कहने लगे, "ऐ मेरे रब! तूने मुझे कुछ थोड़े समय तक और मुहलत क्यों न दी कि मैं सदक़ा (दान) करता, और अच्छे लोगों में शामिल हो जाता। हालाँकि जब किसी इनसान की मुहलत पूरी हो जाती है तो अल्लाह किसी इनसान को कभी-भी और मुहलत नहीं देता। और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसकी पूरी ख़बर रखता है।"

(क़ुरआन, सूरा-63 मुनाफ़िक़ून, आयतें-10, 11)

इल्म व हिकमत रखनेवाले कुछ लोगों ने ऐसे लोगों पर अफ़सोस का इज़हार करते हुए कहा है—

"वह शख़्स दुनिया पाकर क्यों ख़ुश रह सकता है जिसके दिन, महीने, और उसकी ज़िन्दगी मौत से क़रीब हो रहे हों।"

(अदद़ुज़्ज़ियारात, पृष्ठ-622)

यह बात सही है कि दुनिया के बहुत-से काम ऐसे हैं जिनके लिए दुनियावी साधनों की ज़रूरत पड़ती है। उनके बिना ज़िन्दगी गुज़ारना मुश्किल है। इनसान की ज़िन्दगी और दुनिया की मिसाल नाव और पानी जैसी है जो एक-दूसरे के लिए ज़रूरी हैं। क्योंकि नाव पानी पर ही चलती है। मगर यह बात नज़र में रहनी चाहिए कि अगर नाव में पानी भर जाए तो वह डूब जाती है। इसलिए दुनिया और उसकी मुहब्बत अगर इनसान के सीने में भर जाए तो उसका बरबाद होना और उसकी आख़िरत का तबाह होना यक़ीनी है।

मौजूदा दौर में लोग मुसलमानों की बहुत-सी समस्याओं और परेशानियों का ज़िक्र करते हैं और उनको बुनियाद बनाकर उन्हें दुनिया हासिल करने की दौड़ में पीछे रह जाने की वजह क़रार देते हैं, जबकि हक़ीक़त में यह कोई समस्या नहीं है। क्योंकि एक मुसलमान की कामयाबी आख़िरत की कामयाबी और निजात में है और इसी में दुनियावी समस्याओं व परेशानियों का हल भी है। हालाँकि हम देखते हैं कि वे लोग भी इस मुक़ाबले में बहुत पीछे हैं जो ऐशो-आराम और ठाठ-बाट की ज़िन्दगी जी रहे हैं। मिसाल के तौर पर मौजूदा दौर के अहम पदों पर बैठे हवसपरस्त ज़िम्मेदार और लीडर जिनकी गिरी हुई शर्मनाक हरकतों की खबरें आए दिन अख़बारों की शोभा बन रही हैं।

शैतानी गरोह लगातार कोशिश में है कि दुनिया की मुहब्बत मुसलमान के दिल में डाल दे। यह दुनिया बहुत-सी सूरतों में सामने आती है और मुसलमानों को लुभाने की कोशिश में रहती है। मुसलमानों को अल्लाह तआला की हिदायतों और उसके रसूल (सल्ल०) की शिक्षाओं को हमेशा ध्यान में रखते हुए दुनिया के मायाजाल से दूर रहना चाहिए, क्योंकि दुनिया की मुहब्बत ईमान को ख़त्म कर देती है।

अल्लाह पर भरोसा

'उम्मीद' का इनसानी ज़िन्दगी से गहरा ताल्लुक़ है। हर एक आदमी की भावनाएँ सीधे उससे जुड़ी होती हैं। उसके बिना ज़िन्दगी का क़ाफ़िला आगे नहीं बढ़ सकता। कहते हैं, "नाउम्मीदी कुफ़्र है और उम्मीद पर दुनिया क़ायम है।" यह उम्मीद ही है जिसकी बुनियाद पर व्यापारी अपनी दुकान खोलता है और सुबह से शाम तक उसमें दिल लगाकर बैठता है। उसे उम्मीद होती है कि उसे अच्छा मुनाफ़ा मिलेगा। किसान खेत में हल चलाकर उसमें बीज डालता है, इस उम्मीद के साथ कि इससे ख़ूब अनाज पैदा होगा। माँ-बाप अपनी औलाद की तरबियत करते हैं कि आगे चलकर वह एक अच्छा इनसान बनेगा और क़ौम और मिल्लत की तरक़्क़ी में मददगार बनेगा। मानो ज़िन्दगी के हर मैदान में इनसान किसी-न-किसी तरह की उम्मीद ज़रूर रखता है और उम्मीद के सहारे अपनी योजनाओं को अमली शक्ल देने की कोशिश में लगा रहता है। 'उम्मीद' की हक़ीक़त क्या है, इसे समझने की ज़रूरत है।

इस्लाम की ज़बान में उम्मीद के दो मानी बयान किए जाते हैं। एक मानी है अल्लाह से दरगुज़र और मग़फ़िरत की उम्मीद रखना। दूसरा मतलब है ज़िन्दगी में ख़ुशहाली आने का इन्तिज़ार और मुसीबतों और परेशानियों से निजात की उम्मीद। अल्लामा इब्ने-क़य्यिम (रह०) ने पहले मतलब को इस अन्दाज़ में बयान किया है—

> "उम्मीद अस्ल में इबादत है, वरना इनसानी अंग इताअत और पैरवी के लिए राज़ी ही न होते। इसी तरह उस उम्मीद की ख़ुशबू अगर न होती तो इरादों के समुद्र में आमाल की नाव न चलती।"
>
> (मदारिजुस्सालिकीन, हिस्सा-2)

यह एक सच्चाई है कि उम्मीद इनसान के ख़यालों में जान पैदा करती

है और उसको अमली शक्ल देने का काम इनसानी अंग मिलकर करते हैं। कहा गया है—

"ईमान उम्मीद और ख़ौफ़ के बीच है।"

एक ईमानवाले के अन्दर दोनों ख़ूबियाँ हों तो समझ लेना चाहिए कि उसके दिल में ईमान है। क़ुरआन मजीद में इसकी अहमियत बताते हुए कहा गया है—

> "जो लोग अल्लाह की किताब पढ़ते हैं, इस हाल में कि नमाज़ के पाबन्द हैं और जो कुछ हमने उन्हें दिया है उसमें से छिपे और खुले ख़र्च करते हैं, वे एक ऐसे व्यापार की उम्मीद रखते हैं जो कभी तबाह न होगा।" (क़ुरआन, सूरा-35 फ़ातिर, आयत-29)

क़ुरआन मजीद में एक और जगह फ़रमाया गया है—

> "या वह जो इताअत करनेवाला और फ़रमाँबरदार है। रात की घड़ियों में सजदा करता और खड़ा रहता है, आख़िरत से डरता है और अपने रब की रहमत की उम्मीद रखता है। उनसे पूछो, क्या जाननेवाले और न जाननेवाले लोग कभी बराबर हो सकते हैं? शिक्षा और नसीहत तो अक़्ल और समझवाले ही हासिल करते हैं।"
> (क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, आयत-9)

फिर यह भी एक सच्चाई है कि इनसान जो भी काम करे अगर उसने अल्लाह से उम्मीद बाँध रखी है तो अल्लाह उसकी उम्मीद के मुताबिक़ उसे अता करता है।

एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) एक नौजवान के घर पहुँचे, जो मौत की बीमारी से जूझ रहा था। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम्हें कैसा महसूस होता है?" उसने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह की क़सम! मुझे अल्लाह से बेहतरी की उम्मीद है, लेकिन अपने गुनाहों का डर भी है।" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इस मक़ाम पर एक बन्दे के अन्दर जब ये दो बातें हैं तो अल्लाह उसे उम्मीद के मुताबिक़ अता करेगा और उसको उन गुनाहों के डर से महफ़ूज़ कर देगा।" (हदीस : तिरमिज़ी)

एक हदीसे-क़ुदसी है, जिसके बयान करनेवाले हज़रत अनस (रज़ि॰) हैं। इस हदीस का एक हिस्सा यह है—

> "अल्लाह कहता है कि ऐ आदम की औलाद! तूने मुझे याद किया और मुझसे उम्मीद बाँधी, मैंने तेरे सारे गुनाहों को माफ़ कर दिया और मैं बेनियाज़ हूँ।" (हदीस : तिरमिज़ी)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने हमें एक दुआ सिखाई है, जिसे हम 'दुआ-ए-क़ुनूत' कहते हैं। उसका एक हिस्सा है, नरजू रह-मतक "ऐ अल्लाह! हम तेरी रहमत की उम्मीद करते हैं।"

'उम्मीद' की वज़ाहत इसके विलोम शब्द 'नाउम्मीदी' से होती है। इसी को मायूसी भी कहते हैं। अल्लाह तआला ने इससे मना फ़रमाया है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

> "अल्लाह की रहमत से मायूस न हो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, आयत-53)

उम्मीद मुसलमान की ख़ास ख़ूबी है, जबकि नाउम्मीदी गुमराह लोगों की विशेषता है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

> "अल्लाह की रहमत से गुमराह लोग ही मायूस होते हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, आयत-56)

इनसान को चाहिए कि वह हमेशा उम्मीद पर क़ायम रहे। यही ख़ूबी उसे अपने मिशन को जारी रखने में कामयाब बनाती है। वह नाउम्मीदी को अपने क़रीब भी न आने दे। इसलिए कि इससे आदमी बुज़दिल और बेजान होकर ईमान से महरूम होने लगता है। नाउम्मीदी की हालत में इनसान अमल से कोसों दूर हो जाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि उम्मीद का दूसरा नाम ज़िन्दगी और नाउम्मीदी का नाम मौत है। उम्मीद के बग़ैर इनसान सिर्फ़ एक ढाँचा रह जाता है, जिसमें कोई रूह नहीं होती। अल्लामा इक़बाल (रह॰) ने अल्लाह की दी हुई इस अमानत को ज़िन्दा रखने के लिए इस तरह कहा है—

रहे फूला-फला यारब चमन मेरी उम्मीदों का,
जिगर का ख़ून दे-देकर ये बूटे हमने पाले हैं।

यह उम्मीद ही है जो इनसान को नेकी पर उभारती है। क़ुरआन में है—

"जो कोई अपने रब से मिलने की उम्मीद रखता हो, उसे चाहिए कि नेक काम करे और अपने रब की बन्दगी में किसी को साझी न बनाए।" (क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-110)

ख़ुदकुशी का हराम होना

ख़ुदकुशी या आत्महत्या ज़िन्दगी से मायूसी और हार की घटिया सूरत है। बुज़दिली की इस घिनावनी हरकत को लोग अलग-अलग वजहों और हालतों में अंजाम देते हैं। फिर यह बदतरीन हरकत कई मज़हबों में फ़ख़्र की वजह बन जाती है और कुछ जगहों पर इसे इज़्ज़त और शराफ़त की नज़र से देखा जाता है। कई मज़हबों ने इसे बुरा कहा, मगर दोटूक अन्दाज़ में दलीलों के साथ अपने नज़रिए का इज़हार न कर सके। इस्लाम ही एक ऐसा मज़हब है जिसने इस बुरे काम को हराम मौत और इसे करनेवाले को जहन्नमी क़रार दिया है। ख़ुदकुशी का मतलब क़ुरआन की इस आयत से मालूम होता है, जिसमें अल्लाह ने कहा—

"और अपने हाथों अपने-आपको तबाही में न डालो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-195)

क़ुरआन की इस आयत से साफ़ ज़ाहिर है कि ज़िन्दगी जैसी अहम चीज़ को बरबाद करने का हक़ अल्लाह ने हमें नहीं दिया है।

इस्लाम जो कि मुकम्मल निज़ामे-हयात यानी सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था है, उसने इस नापसन्दीदा अमल को हराम मौत ही क़रार नहीं दिया, बल्कि उसके कारणों का विस्तार से जायज़ा भी लिया है। क्योंकि ज़्यादातर लोग अपनी ख़ुशी और मर्ज़ी से ख़ुदकुशी नहीं करते, बल्कि परेशानियाँ, हादसों से बेबसी और लाचारी और ज़िन्दगी से मायूसी, क़र्ज़ का बोझ, नाकामी, शर्मिन्दगी, गुनाह का एहसास, अपनी ख़ानदानी आन-बान और अपनी मौत के ज़रिए माँ-बाप को दुख पहुँचाने की कोशिश उनकी ख़ुदकुशी की वजह बन जाती है।

मिसाल के तौर पर एक आदमी अपनी ज़िन्दगी से बिलकुल मायूस हो चुका है कि क़र्ज़ की अदाएगी उसके बस से बाहर नज़र आती है। वह जो

भी काम करता है उसमें उसे नाकामी व नामुरादी मिल रही है। गुनाह का एहसास उसे सताए जा रहा है। बेबुनियाद आरोपों का सदमा लेकर जीना दूभर हो रहा है। वह सब कुछ अपने माँ-बाप के लिए कर रहा है, मगर फिर भी उसे माँ-बाप की फिटकार ही मिल रही है। किसी लड़की से मुहब्बत हुई, शादी का वादा भी हुआ, मगर उस लड़की ने किसी और के साथ शादी रचा ली या फिर बीवी ने अपने शौहर के साथ बेवफ़ाई की, जिसकी वजह से मर्द ने ख़ुदकुशी कर ली, वग़ैरा।

इस्लाम ने इन तमाम कारणों को देखते हुए व्यापक इस्लामी शिक्षाएँ दी हैं जो एक मार्गदर्शन है, जिसकी रौशनी में एक सच्चा मुसलमान अपनी ज़िन्दगी से इतना मायूस नहीं हो सकता जो उसको ख़ुदकुशी करने पर मजबूर करे।

कभी-कभी ख़ुदकुशी का फ़ैसला जल्दबाज़ी में होता है वरना ज़्यादातर मामलों में यह कई मरहलों में तय होता है। यानी नाकामी-पर-नाकामी उसके इस फ़ैसले को मज़बूत करती है। इसलिए देखा गया है कि डूबने की कोशिश करनेवाला 'बचाओ! बचाओ!' की आवाज़ भी लगाता है। कुछ मज़हबी ख़याल इसका हौसला भी बढ़ाते हैं। मिसाल के तौर पर आवागमन का नज़रिया इस बात के लिए आमादा करता है कि ऐसी परेशान ज़िन्दगी से बेहतर है कि ख़ुद को ख़त्म कर दिया जाए, ताकि दोबारा अच्छी ज़िन्दगी मिले। या किसी महबूबा की मौत हो गई तो ख़ुद को भी ख़त्म कर लिया, ताकि दोबारा दोनों एक साथ दुनिया में आएँ।

मौजूदा दौर में इस काम की बहुत-सी सूरतें देखने को मिलती हैं। ज़िन्दगी से मायूस आदमी इस कोशिश में लग जाता है कि उसे आसानी से मौत आ जाए और कोई उसे बचानेवाला भी मौजूद न हो। मिसाल के तौर पर कोई ज़हरीली चीज़ खा ली, कई मंज़िल की इमारत से छलाँग लगा ली, ट्रेन की पटरी पर लेट गया, ख़ुद को गोली मार ली, घातक हथियार का इस्तेमाल कर लिया या ख़ुद को नशे का आदि बना लिया वग़ैरा।

इस्लाम ने इन तमाम कारणों में मायूसी, बुज़दिली, ज़िल्लत और रुसवाई

के डर को बुनियादी वजह क़रार देते हुए अपना नुस्ख़ा बताया है—

"जो अल्लाह पर भरोसा रखेगा वह उसके लिए काफ़ी है।"

(क़ुरआन, सूरा-65 तलाक़, आयत-3)

ज़िन्दगी से मायूस होना अल्लाह पर भरोसा न करने की निशानी है। इस्लाम की तालीम यह है कि बुज़दिली की वजह से ख़ुदकुशी करने के बदले मुश्किल हालात का मुक़ाबला करना चाहिए।

इस्लाम के शुरुआती दौर में सहाबा (रज़ि॰) को ज़लील व रुसवा किया गया। क्या वे हक़ीक़त में इसके हक़दार थे? नहीं! उनकी बीवियों को भी बेइज़्ज़ती का सामना करना पड़ा, उनका जुर्म क्या था? हज़रत ख़ुबैब (रज़ि॰) को सूली पर चढ़ाने से पहले उनके जिस्म के हिस्सों को बुरी तरह काटा गया, क्या क़ुसूर था उनका? वे तपती हुई रेत पर घसीटे गए, बड़े-बड़े पत्थर उनके जिस्म पर रख दिए गए और दहकते हुए अँगारों से लोहा निकालकर उनके जिस्म को दाग़ा गया। ये लोग चाहते तो इन परेशानियों से बचने के लिए ख़ुदकुशी कर लेते। मगर इस्लाम पर मर मिटनेवालों ने इस ज़ुल्म-ज़्यादती की ज़िन्दगी को बरदाश्त किया, मगर ख़ुदकुशी जैसी बुज़दिलाना हरकत नहीं की।

इस्लाम ने बताया कि यह ज़िन्दगी अल्लाह की दी हुई अमानत है। इसे बरबाद करने का हक़ किसी को नहीं। क्या हुआ जो किसी का पति मर गया, दुनिया में और लोग भी हैं जो उसकी देखभाल कर सकते हैं, और उसकी ज़िन्दगी को ख़ुशगवार बना सकते हैं। इसलिए इस्लाम में विधवाओं से शादी करने पर उभारा गया है। क्या हुआ, जो नाकामी मिली, नाकामी तो कामयाबी की सीढ़ी होती है। मायूसी और नाउम्मीदी क्यों, जबकि उम्मीद पर दुनिया क़ायम है। इसलिए इनसान को ज़िन्दगी की आख़िरी साँस तक कोशिश व संघर्ष करते रहना चाहिए।

ये मुश्किलें और परेशानियाँ तो अस्थायी हैं। यह ज़िन्दगी धूप-छाँव की तरह लगी हुई है। इसलिए ऐसे हालात में सब्र और संयम से काम लेना चाहिए। क़ुरआन मजीद की बेशुमार आयतें हैं जिसमें इन्हीं बातों को

दोहराया गया है। अल्लाह कहता है–

"और हम ज़रूर तुम्हें डर व ख़ौफ़, भूख व फ़ाक़े से, और जान व माल के नुक़सान और आमदनियों के घाटे में डालकर आज़माएँगे। और ऐसे हालात में सब्र करनेवालों को ख़ुशख़बरी दे दो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-155)

अल्लाह तआला किसी को उसकी ताक़त और सहन-शक्ति से ज़्यादा तकलीफ़ नहीं देता। क़ुरआन में है–

"अल्लाह किसी जानदार पर उसकी ताक़त से ज़्यादा ज़िम्मेदारी का बोझ नहीं डालता।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-286)

इस्लाम इनसान के दिल में उन परेशानियों से निपटने के लिए जोश, हिम्मत और रूहानी ताक़त पैदा करता है और उसे ज़िन्दगी के हर मोड़ पर ख़ुशबख़्ती व ख़ुशनसीबी का एहसास होता है। इस्लाम का पाबन्द इनसान ख़ुदकुशी का शब्द अपनी ज़बान पर लाना अपनी बहादुरी व जवाँमर्दी के ख़िलाफ़ और बड़ा गुनाह समझता है।

ख़ुलूस–ईमान का तक़ाज़ा

खाने-पीने की चीज़ों में मिलावट हो तो वह सीधे इनसान के जिस्म पर असर करती है और अगर दीन और ईमान में हो तो इनसान को दुनिया व आख़िरत दोनों में नाकाम और रुसंवा करती है। इससे भी आगे बढ़कर आज मिलावट ने ख़ूबसूरत रूप में छिपे हुए ज़हर की शक्ल अपना ली है जो इनसान के वुजूद को ही ख़त्म करके रख देता है। ईमान और अक़ीदे मे ख़ुराफ़ात और बिदअतों (दीन में नई चीज़ों) को मिला दिया गया है। कुछ मुसलमानों ने तो नाम के अलावा सारा तौर-तरीक़ा ही ग़ैर-इस्लामी अपना लिया है। मानो दूध में पानी नहीं, बल्कि पानी में दूध मिलाया गया है।

अगर हम इस मिलावट का जायज़ा लें तो महसूस होगा कि यह हमारी इबादतों और मामलों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि हमारी सोच, हमारी भावनाओं और हमारे नज़रियों में भी मिलावट हो गई है। हमारी दोस्ती मुहब्बत और आपसी ताल्लुक़ात भी मिलावट के शिकार हैं। कोई चीज़ ख़ालिस (शुद्ध) नहीं रह गई है। हर जगह दिखावा और बनावट नज़र आती है। इसी मंज़र को बयान करते हुए उर्दू के मशहूर कवि अल्लामा इक़बाल (रह०) ने कहा है–

न वो इश्क़ में रहीं गर्मियाँ न वो हुस्न में रहीं शोख़ियाँ
न वो ग़ज़नवी में तड़प रही, न वो ख़म है ज़ुल्फ़े-अयाज़ में
जो मैं सर-ब-सजदा हुआ कभी तो ज़मीं से आने लगी सदा
तेरा दिल तो है सनम आशना तुझे क्या मिलेगा नमाज़ में।

इस दौर का इनसान ज़ाहिर में दोस्ती तो ख़ूब करता है, मगर क्या इस दोस्ती में नेक नीयती व ख़ुलूस है? क्या वह किसी का दोस्त होने की बुनियाद पर उसका भला चाहनेवाला और राज़दार है? या यह दोस्ती सिर्फ़ दिखावा है, जिसमें नफ़रत और दुश्मनी छिपी हुई है? पड़ोसी से दुआ सलाम

है, मगर क्या उसमें ख़ुलूस है, या केवल रस्म के तौर पर कहे जानेवाले बोल हैं? अगर सलाम में ख़ुलूस है तो मुसलमानों का आपसी रिश्ता मज़बूत होगा और आपस में वे सीसा पिलाई हुई दीवार की तरह होंगे। फिर कामयाबी के ऊँचे मक़ाम तक पहुँचने में कोई चीज़ रुकावट न बन सकेगी।

इस्लाम अपने माननेवालों को पूरी तरह इस्लाम में दाख़िल होने की दावत देता है। इस्लाम में मिलावट नापसन्दीदा है, जिसे धोखा कहा जा सकता है, जो हराम है। क़ुरआन मजीद की नीचे दी गई आयतों में यह बात स्पष्ट की गई है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

> झूठ का रंग चढ़ाकर सच को संदिग्ध (जिसमें कोई शक हो) न बनाओ और न जानते-बूझते सच को छिपाओ।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-42)
>
> "जो लोग ईमान लाए और अपने ईमान में किसी ज़ुल्म की मिलावट नहीं की, उन्हीं लोगों के लिए हक़ीक़त में अम्न व सलामती है और वही सीधे रास्ते पर हैं।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-82)
>
> "देखो! ये लोग अपने सीनों को मोड़ते हैं, ताकि उससे छिप जाएँ सावधान! जब ये कपड़ों से ख़ुद को ढाँकते हैं, अल्लाह उनके छिपे को भी जानता है और खुले को भी, वह तो उन भेदों को भी जानता है जो सीनों में हैं।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-5)
>
> "और उन्हें यही हुक्म दिया गया था कि वे अल्लाह की बन्दगी करें, अपने दीन (धर्म) को उसके लिए ख़ालिस करके बिलकुल एकाग्र होकर, और नमाज़ की पाबन्दी करें और ज़कात दें। और यही सीधा और सच्चा दीन है।" (क़ुरआन, सूरा-98 बय्यिनह, आयत-5)

ईमानी भाईचारा और आपसी ताल्लुक़ात के सिलसिले में इस्लाम ने यह साफ़ कह दिया है कि उनकी बुनियाद ईमान पर और अल्लाह के लिए होनी चाहिए। इसका लाज़मी नतीजा यह होगा कि ईमानवाले अल्लाह के लिए आपस में मुहब्बत करेंगे और एक-दूसरे के मुख़लिस और ख़ैरख़ाह होंगे।

इस सिलसिले में हम प्यारे नबी (सल्ल॰) की सीरत से भी रहनुमाई

हासिल कर सकते हैं—

"एक बार नबी (सल्ल॰) किसी बाज़ार से गुज़रे। वहाँ एक अनाज की बोरी में हाथ डाला तो उस अनाज को भीगा हुआ पाया। आप (सल्ल॰) ने दुकानदार से कहा, "ऐ अनाजवाले! यह क्या मामला है", उसने जवाब दिया, "ऐ अल्लाह के रसूल! बारिश की वजह से अनाज गीला हो गया है।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तुमने उस अनाज को ऊपर क्यों नहीं रखा, ताकि लोगों को नज़र आता।" फिर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, जिसने धोखाधड़ी की वह हममें से नहीं।" (हदीस : तिरमिज़ी)

इस सिलसिले में नबी (सल्ल॰) की एक और हदीस भी हमारी रहनुमाई करती है जिसमें आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिसने दिखावे की नमाज़ पढ़ी उसने शिर्क किया। जिसने दिखावे के लिए रोज़ा रखा उसने शिर्क किया और जिस किसी ने दिखाने के लिए सदक़ा किया उसने शिर्क किया।"

(हदीस : मुसनद अहमद)

ऊपर बयान की गई हदीसों की रौशनी में हम अपने कामों का जायज़ा लें तो ज़्यादातर मामलों में हम ख़ुद को ख़ाली हाथ महसूस करेंगे। हमारे कामों में झूठ, धोखाधड़ी, दिखावा आदि की मिलावट होगी। दिखावे के ताल्लुक़ से हम अकसर ग़फ़लत का शिकार हो जाते हैं, जबकि आप (सल्ल॰) ने इसे छोटा शिर्क क़रार दिया है। सच्चाई यही है कि इस दौर में ईमान के साथ दिखावे की मिलावट बहुत बढ़ गई है। बहुत कम दीनी मामले बिना दिखावे और नुमाइश के अंजाम पाते हैं। ऐसे दिखावा करनेवाले लोगों की आख़िरत में सख़्त पकड़ होगी। एक लम्बी हदीस में प्यारे नबी (सल्ल॰) ने दिखावे के शहीद, आलिम और सख़ी (दानी) का ज़िक्र करते हुए फ़रमाया—

"क़ियामत के दिन सबसे पहले उनका मुक़दमा पेश किया जाएगा और उनके नेक कामों के बावजूद दिखावे की वजह से उन्हें मुँह के बल घसीटकर जहन्नम में डाल दिया जाएगा।" (हदीस : मुस्लिम)

इसके बरख़िलाफ़ मुख़लिस और नेक लोगों का क़ियामत के दिन ऊँचा मक़ाम होगा। वे अपनी इस ख़ूबी की वजह से अल्लाह के अर्श के साए में होंगे। इस ताल्लुक़ से प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"क़ियामत के दिन, जब अल्लाह के साए के अलावा कोई साया न होगा, सात क़िस्म के लोग ऐसे होंगे जो उस साए में होंगे। एक इनसाफ़पसन्द हुक्मराँ (बादशाह), वह जवान जो अल्लाह की इबादत में लगा रहा, वह आदमी जिसका दिल मस्जिद में अटका हो, वे दो आदमी जो अल्लाह की ख़ातिर आपस में मुहब्बत करें और उनका इकट्ठा और जुदा होना अल्लाह ही की ख़ातिर हो, एक वह आदमी जिसे एक ख़ूबसूरत और इज़्ज़त और रुतबेवाली औरत ने अपनी तरफ़ बुलाया, लेकिन उसने कहा कि मैं अल्लाह से डरता हूँ, एक वह आदमी जिसने दिखावे से पाक होकर छिपाकर सदक़ा (दान) किया, यहाँ तक कि उसके बाएँ हाथ को भी मालूम नहीं हुआ कि उसके दाएँ हाथ ने क्या ख़र्च किया है। एक वह आदमी जिसने तनहाई में अल्लाह को याद किया और उसकी आँखें बह पड़ीं।" (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस से ख़ुलूस की अहमियत का अच्छी तरह अन्दाज़ा हो जाता है। इस्लाम ने ख़ुलूस को बड़ी अहमियत दी है। इसी को देखते हुए इमाम बुख़ारी (रह॰) ने अपनी किताब की शुरुआत इस हदीस से की है–

"आमाल का दारोमदार नीयतों पर है। हर शख़्स को उसकी (अच्छी या बुरी) नीयत के मुताबिक़ (अच्छा या बुरा) बदला मिलेगा। इसलिए जिसकी हिजरत अल्लाह और उसके रसूल के लिए होगी, उसकी हिजरत उन्हीं की तरफ़ समझी जाएगी और जिसने दुनिया हासिल करने के लिए या किसी औरत से निकाह करने के लिए हिजरत की तो उसकी हिजरत उसी मक़सद के लिए होगी।"

(हदीस : बुख़ारी)

मालूम हुआ कि हर काम के लिए इख़लास ज़रूरी है। हर नेक काम में

अल्लाह की ख़ुशनूदी नज़र के सामने हो। अगर किसी नेक काम में इख़लास के बदले कोई और भावना (जज़्बा) मिल गई तो वह अल्लाह के यहाँ मक़बूल नहीं होगा।

सहाबा (रज़ि॰) के आमाल इख़लास की बुनियाद पर होते थे। वे हमेशा अपने कामों का जायज़ा लेते रहते थे। थोड़ा भी दिखावे का शक होता तो ख़ुद ही उसे मुनाफ़िकों जैसा अमल क़रार देते। हमें सहाबा (रज़ि॰) से सुनने को मिलता है कि वे अपने बारे में यहाँ तक कह जाते थे कि मैं मुनाफ़िक़ हो गया। यही वजह है कि वे दीन और दुनिया दोनों जगह कामयाब हुए। उस दौर का समाज एक मिसाली समाज बना, जो रहती दुनिया के लिए नमूना है।

अगर हम चाहते हैं कि हमारा समाज भी नेक, सेहतमन्द और मिसाली हो तो जिस तरह हम भोजन या दूसरी चीज़ों में मिलावट को अपनी सेहत के लिए नुक़सानदेह समझते हैं, उसी तरह हमें अपने कामों का भी जायज़ा लेते रहना चाहिए कि जाने-अनजाने कहीं हम इसमें बुरे व ख़राब कामों की मिलावट तो नहीं कर रहे हैं। कहीं हम हक़ के रास्ते से भटक तो नहीं गए हैं। हम हर वक़्त चोकन्ना रहें, इसलिए कि अल्लाह फ़रमाता है—

> "ऐ नबी! उनसे कहो, क्या हम तुम्हें उन लोगों की ख़बर दें, जो अपने कर्मों की वजह से सबसे बढ़कर घाटा उठानेवाले और नामुराद हैं? जिनकी सारी कोशिश दुनिया की ज़िन्दगी में सीधे रास्ते से भटकी रही और वे समझते रहे कि वे सब कुछ ठीक कर रहे हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयतें-103,104)

सेहत व ताक़त ज़रूरी है

क़ौम व मिल्लत में सुधार और उसकी कामयाबी के लिए ज़रूरी है कि समाज में अम्न व शान्ति क़ायम हो। इनसानों की जान व माल महफ़ूज़ हों। उन्हें वे हक़ दिए जाएँ जो उन्हें मिलने चाहिएँ। ज़ुल्म व नाइनसाफ़ी का ख़ातिमा हो। ऐसे क़ानूनों को अमली तौर पर लागू किया जाए जो ज़िन्दगी के हर-एक मैदान तक फैले हुए हों। जहाँ लोग एक-दूसरे के दर्द व ग़म को जानते हों और भाईचारे का माहौल पाया जाता हो, पड़ोसियों का ख़याल किया जाता हो, और लोग एक-दूसरे के दुख-दर्द में शामिल होते हों।

जहाँ ऐसा नहीं होगा वहाँ समाज बदअम्नी का शिकार हो जाएगा। लोग एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे होंगे। इनसानियत सिसक-सिसककर दम तोड़ने लगेगी। ज़ुल्म का बोलबाला होगा। चारों तरफ़ अंधेरा होगा और लोग डर और आतंक के साए में ज़िन्दगी गुज़ारेंगे। ऐसे में न देश तरक़्क़ी कर सकेगा और न क़ौम कामयाबी से हमकिनार होगी। मौजूदा दौर में वह तमाम ख़राबियाँ आ चुकी हैं जिनसे समाज बदहाल है। इसमें ज़ालिम ज़ुल्म करते हुए भी शर्मिंदा नहीं हैं। ताक़तवर कमज़ोरों को सता रहा है, अक्सरियत (बहुसंख्यक) अक़ल्लियत (अल्पसंख्यक) के वुजूद को मानने के लिए तैयार नहीं और उनकी जान की दुश्मन है। बस्तियाँ जलाई जा रही हैं, जिनके बनाने और सँवारने में इनसान अपनी आधी उम्र खपा देता है। लगातार होनेवाले दंगों से इनसानियत कराह रही है। उनकी ख़बरों से अख़बार भरे नज़र आते हैं। उनकी बेबसी और लाचारी की तस्वीरों से अल्लामा इक़बाल के शेर का यह मिसरा ज़ेहन में ताज़ा हो जाता है—

"है जुर्म ज़ईफ़ी की सज़ा मर्गे-मफ़ाजात"

यह बात तसलीमशुदा है कि समाज में दो तरह के गरोह पाए जाते हैं। एक वह जो भेदभाव की बुनियाद पर इनसानियत का गला घोंटते हैं और फ़साद व बिगाड़ का माहौल पैदा करके समाज को तबाह व बरबाद करना

चाहते हैं। दूसरे वे लोग हैं जो अम्न व शान्ति चाहते हैं और समाज के बनाने और उसकी तरक़्क़ी के लिए हर मुमकिन कोशिश करते हैं। यह भी सच्चाई है कि इन दोनों में से हर एक-दूसरे का मुख़ालिफ़ होता है। कोई किसी का वुजूद स्वीकार करने को तैयार नहीं। ऐसा हो भी नहीं सकता, क्योंकि ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं। इसी वजह से उनका आपसी टकराव यक़ीनी है, जो पहले दिन से चला आ रहा है और क़ियामत तक जारी रहेगा।

ऐसे माहौल के लिए इस्लामी शिक्षाएँ क्या हैं? उन्हें आम करने की ज़रूरत है। ज़रूरी है कि इस्लाम के माननेवाले ताक़तवर हों। वह ताक़त चाहे ईमानी लिहाज़ से हो, जैसे ख़ुदा पर पक्का यक़ीन, अपनी बात पर जमे रहना, मिशन के लिए हर मुमकिन उपाय करना, विचारों व सोच की मज़बूती और इस्लामी शरीअत को ही ज़िन्दगी का मुकम्मल निज़ाम होने का क़ौली और अमली दावा, या फिर शारीरिक शक्ति, जैसे मुख़ालिफ़ गरोह के हमले और दंगों से निपटने के लिए कामयाब हिफ़ाज़ती इन्तिज़ाम।

जहाँ तक ईमानी ताक़त का सवाल है तो एक मुसलमान का अपने मिशन में कामयाब होने के लिए यह ज़रूरी शर्त है। दूसरी ताक़त जो अल्लाह को बेहद महबूब है वह शारीरिक सेहत और शक्ति है।

अल्लाह ज़ुल्म और बर्बरता को पसन्द नहीं करता । इसलिए अद्ल व इनसाफ़ को क़ायम किया जाना चाहिए। वह बुरी बातों को पसन्द नहीं करता, इसलिए नेकी का काम करना चाहिए। ऊपर दिए गए सारे काम अल्लाह के माननेवाले और उसके हुक्मों की पाबन्दी करनेवाले ही अच्छी तरह अंजाम दे सकते हैं। मगर चूँकि यह काम आसान नहीं है इसलिए उन्हें अपने अन्दर जहाँ एक तरफ़ ईमान की मज़बूती पैदा करनी होगी, वहीं गुमराह और हक़ का इनकार करनेवाले गरोह से टकराव के वक़्त जिस्मानी ताक़त व क़ाबिलियत की ज़रूरत है।

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की ज़िन्दगी से मालूम होता है कि आप (सल्ल॰) बहुत ताक़तवर और बहादुर थे। जब कुश्ती (दंगल) के लिए कोई ललकारता तो बड़े-से-बड़े पहलवान को पछाड़ देते थे। एक मौक़े पर आप

(सल्ल॰) ने इस्लाम की मदद के लिए हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि॰) के ईमान लाने के लिए अल्लाह से ख़ासतौर पर दुआ की, जो उस ज़माने में एक बहादुर और ताक़तवर इनसान की हैसियत से जाने जाते थे।

"ऐ अल्लाह! तू इस्लाम को उमर-बिन-ख़त्ताब के ज़रिए से ख़ासतौर से इज़्ज़त अता फ़रमा।" (हदीस : इब्ने-माजा)

अल्लाह ने दुआ क़बूल फ़रमाई। हज़रत उमर फ़ारूक़ आज़म (रज़ि॰) ने बाद में जो कारनामे अंजाम दिए, वे किसी से छिपे नहीं हैं।

प्यारे नबी (सल्ल॰) ने सहाबा (रज़ि॰) में इन दोनों ताक़तों (ईमानी ताक़त और जिस्मानी क़ाबिलियत) को परवान चढ़ाया। इसलिए हम देखते हैं कि सहाबियों में जहाँ ईमान की पुख़्तगी (परिपक्वता) और ख़ुद्दारी मिलती है, वहीं वे जंगी लिहाज़ से मज़बूत, ताक़तवर और बहादुर दिखाई देते हैं।

जंगे-बद्र की घटना है कि जब ग़ैर-मुस्लिमों (उतबा, शैबा और वलीद) ने जंग के लिए ललकारा तो उनके मुक़ाबले के लिए मुसलमानों की तरफ़ से शुरू में अनसारियों में से तीन सहाबा (रज़ि॰) आगे आए। मगर ग़ैर-मुस्लिमों ने अपने यानी क़ुरैश में से अपने मुक़ाबिल योद्धाओं (लड़नेवालों) की माँग की। जिसपर तीन बहुत ही ताक़तवर और जंग की कला के माहिर आगे बढ़े और अपने मुक़ाबले में आनेवालों का काम तमाम किया। वे थे उबैदा-बिन-हारिस (रज़ि॰), हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) और हज़रत अली (रज़ि॰)। सिर्फ़ हज़रत उबैदा-बिन-हारिस (रज़ि॰) मामूली ज़ख़्मी हुए। इतने मज़बूत और बहादुर होते थे सहाबा (रज़ि॰)।

क़ुरआन मजीद में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) और सहाबा (रज़ि॰) की ख़ूबियों का ज़िक्र इन शब्दों में किया है—

"मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं और जो लोग उनके साथ हैं, वे हक़ के इनकारियों पर सख़्त और आपस में रहमदिल हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-48 फ़तह, आयत-29)

इसकी तफ़सीर में मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह॰) फ़रमाते हैं—

"सहाबा का हक़ के इनकारियों पर सख़्त होने का मतलब यह है कि वे

मोम की नाक नहीं हैं कि उन्हें हक़ के दुश्मन जिधर चाहें मोड़ दें। वे नर्म-चारा नहीं हैं कि हक़ के इनकारी उन्हें आसानी से चबा जाएँ। उन्हें किसी डर से दबाया नहीं जा सकता। उन्हें किसी तरह बहला-फुसलाकर ख़रीदा नहीं जा सकता। हक़ के दुश्मनों में यह ताक़त नहीं कि उन्हें इस अज़ीम मक़सद से हटा दें जिसके लिए वे सिर-धड़ की बाज़ी लगाकर मुहम्मद (सल्ल॰) का साथ देने के लिए उठे हैं।

और आपस में रहीम हैं, यानी उनकी सख़्ती जो कुछ भी है वह दीन के दुश्मनों के लिए है, ईमानवालों के लिए नहीं है। ईमानवालों के लिए वे नर्म हैं, रहम करनेवाले और मुहब्बत करनेवाले हैं, हमदर्द और ग़मगुसार हैं। उसूल और मक़सद की एकता ने उनके अन्दर एक-दूसरे के लिए मुहब्बत और हमरंगी व साज़गारी पैदा कर दी है।

(तर्जुमा-ए-क़ुरआन, पेज-1308, 1309)

अगर कोई शख़्स किसी मुसलमान की जान लेने के दरपे हो तो ऐसी सूरत में उसके लिए बुज़दिली का मुज़ाहरा करते हुए उससे रहम व करम की भीख माँगने के बजाय अपनी हिफ़ाज़त करना लाज़िम हो जाता है।

यही वजह है कि अपनी जान और अपने माल की हिफ़ाज़त करते हुए अगर किसी मुसलमान की जान चली जाए तो इस्लाम ने उसे शहीद का सम्मान दिया है। हिफ़ाज़त के लिए ताक़त ज़रूरी है और उसका सही इस्तेमाल साहस और बहादुरी के ज़रिए से होता है।

नबी (सल्ल॰) ने इस ताल्लुक़ से अपनी उम्मत को बहुत ही बेहतरीन बात बताई है जो समाज की कामयाबी और अमन व शान्ति क़ायम रखने के लिए बेहद ज़रूरी है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ताक़तवर मुसलमान कमज़ोर मुसलमान से बेहतर और ख़ुदा के नज़दीक ज़्यादा महबूब है। और वैसे तो हर एक में भलाई और ख़ैर पाया जाता है। जो चीज़ तेरे लिए फ़ायदेमन्द हो उसको हासिल करने की कोशिश कर और अल्लाह से मदद माँग और कमज़ोरी न दिखा। और अगर तुझे कोई मुसीबत पहुँचे तो यह न कह कि अगर

मैं ऐसा करता तो ऐसा होता, बल्कि कह कि ख़ुदा ने यही मुक़द्दर बनाया और उसने जो चाहा किया, क्योंकि 'अगर' शैतान के काम का दरवाज़ा खोलता है।" (हदीस : मुस्लिम)

इस हदीस से साफ़ मालूम होता है कि कमज़ोरी चाहे ईमानी हो या जिस्मानी, किसी भी सूरत में पसन्दीदा नहीं है। इसलिए अल्लाह के नज़दीक मज़बूत मुसलमान कमज़ोर मुसलमान से बेहतर है, क्योंकि उसमें दीनी व दुनियावी परेशानियों व मुश्किलों का हल है। साथ ही ख़ैर को अपनाने और भलाई के हासिल करने में किसी तरह का बहाना बनाने या कमज़ोरी दिखाने को मना किया गया है। बहाना कमज़ोरी की निशानी है, जो इनसान को अपने मिशन में आगे बढ़ने से रोकती है। मुसलमान का यह काम है कि वह अल्लाह के अहकाम का पाबन्द रहे। अगर कामयाबी मिली तो ठीक, वर्ना ग़म न करे, क्योंकि यही होना लिखा था।

सेहत और तन्दुरुस्ती इनसानी ताक़त का राज़ है। जबकि मर्ज़ अथवा बीमारी उसके लिए दीमक के समान है जो इनसान की सेहत को बरबाद करती है। उसे अपनी सेहत का भरपूर ख़याल रखना होगा। सेहत एक नेमत है। उसका शुक्र यह है कि उसका ख़याल रखा जाए और उसका सही इस्तेमाल किया जाए।

तंग दस्ती अगरचे हो ग़ालिब,
तन्दुरुस्ती हज़ार नेमत है।

जिस्म को सेहतमन्द, मज़बूत और ताक़तवर बनाने के लिए खाने के साथ व्यायाम और खेल-कूद भी ज़रूरी है। इसी वजह से अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने बच्चों को कभी खेल-कूद से मना नहीं किया, बल्कि उनका हौसला बढ़ाया। आप (सल्ल॰) ने इस मक़सद के लिए कुछ खेलों की हिदायत की। जिसमें दौड़, तैराकी, कुश्ती, तीरअन्दाज़ी आदि अहम हैं।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) फ़रमाती हैं कि मैं एक सफ़र में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के साथ थी। हम दोनों ने दौड़ लगाई। मैं आगे निकल गई। कुछ दिनों के बाद जब मेरा बदन मोटा हो गया तो दोबारा दौड़ का मुक़ाबला

हुआ। उसमें आप (सल्ल॰) बाज़ी ले गए। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया : यह पहले मुक़ाबले का बदला है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

तैराकी के बारे में आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"हर वह चीज़ जिसमें अल्लाह का ज़िक्र न हो बेकार है, सिवाय चार चीज़ों के—(1) आदमी का अपनी बीवी से हँसी-मज़ाक़ करना, (2) उसका अपने घोड़े को सधाना, (3) निशान लगाकर उसके बीच चलना, और (4) तैराकी की तालीम देना।" (मनावी फ़ैज़ुल-क़दीर, 23/5)

हज़रत उमर (रज़ि॰) ने हज़रत अबू-उबैदा (रज़ि॰) को, जो सीरिया के गवर्नर थे, लिखा—

"अपने बच्चों को तैराकी की तालीम दो और जो लड़ने के क़ाबिल हो जाएँ, उन्हें तीरअन्दाज़ी सिखाओ।" (हदीस : मुसनद अहमद)

इस्लाम ने उन तमाम चीज़ों को नाजाएज़, मकरूह और हराम क़रार दिया है जो इनसानी जिस्म को किसी-न-किसी दर्जे में खुले या छिपे रूप से नुक़सान पहुँचाएँ। क्योंकि जिस्म भी अल्लाह की दी हुई एक अमानत है, जिसे मज़बूत और बेहतर रखना हमारी ज़िम्मेदारी है, ताकि उसे ऊँचे मक़सदों (जिसका वह ज़िम्मेदार है उन लोगों की परवरिश और इस्लाम की सरबुलन्दी) के लिए काम में लाया जा सके।

लगातार की जानेवाली नेकी

नेकी और भलाई का काम चाहे, वह कितना मामूली और छोटा क्यों न हो, मगर उसे मामूली नहीं समझना चाहिए, बल्कि उसे लगातार करते रहने की कोशिश करनी चाहिए। साथ ही यह भी होना चाहिए कि इनसान जो भी नेक काम करे उसे लगातार जारी रखे। यह काम बेहतरीन व आदर्श समाज के लिए ज़रूरी है। इससे ज़िन्दगी पर अच्छे असरात पड़ते हैं। इस्लाम में हर नेक काम, चाहे वह किसी भी दर्जे का हो, अहमियत रखता है। इसी लिए किसी भी नेक अमल को छोटा समझकर छोड़ देना मुनासिब नहीं है।

अगर हम किसी बूढ़े आदमी को देखें कि वह अपना सामान उठाए बोझल होकर चल रहा है तो चाहिए कि हम उसकी मदद के लिए आगे बढ़ें और उसका बोझ उठा लें। यह भी एक नेक काम है। कोई कमज़ोर आदमी सीढ़ियों पर अपना सामान उठाए नहीं चल पा रहा है तो उसकी मदद करना हमारी अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी है। दस्तरख़ान पर गिरे दाने को उठाकर खाना नेमत की क़द्र का एहसास दिलाता है। यह भी नेकी है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के फ़रमान के मुताबिक़ ऐसा करना बरकत हासिल करने के लिए ज़रूरी है। इसके अलावा भी ऐसी बहुत-सी मिसालें हैं जिनको भलाई और सदक़ा कहा गया है। मिसाल के तौर पर कोई मुसाफ़िर रास्ता भटक गया है, उसको सही रास्ता बता दें। या किसी बूढ़े और कमज़ोर आदमी को सड़क पार करा दें। किसी की आँख की रौशनी कम हो गई है, उसकी मदद कर दें। इसी तरह के और भी बहुत से नेक काम हो सकते हैं, जो देखने में बहुत मामूली होते हैं, मगर उससे दूसरों की परेशानियाँ दूर होती हैं। और उनके दिल से दुआ निकलती है। इस तरह के छोटे-छोटे कामों को मामूली समझकर नहीं छोड़ना चाहिए। जब यह इनसान की आदत में शामिल हो जाते हैं और वह उनपर लगातार अमल करता रहता है तो वह उसके लिए बड़े ख़ैर का ज़रिआ साबित होते हैं। ये नेकियाँ गुनाहों को मिटाती हैं और जहन्नम से निजात का ज़रिआ बनती हैं। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"नेकियाँ गुनाहों को दूर कर देती हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-114)

बहुत-सी हदीसों में ऐसे छोटे-छोटे कामों की अहमियत बताई गई है और उन्हें जहन्नम के अज़ाब से बचने का ज़रिआ क़रार दिया गया है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तुममें जो शख़्स जहन्नम से बचने की कोशिश कर सकता हो, वह करे, चाहे खजूर का टुकड़ा ही सदक़ा करे।" (हदीस : मुस्लिम)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मुझसे अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ऐ अब्दुल्लाह! तुम फ़ुलाँ आदमी की तरह न हो जाना, वह पहले रात को क़ियाम करता (नफ़्ल वग़ैरा पढ़ता) था। फिर उसने रात का क़ियाम छोड़ दिया।" (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस से मालूम हुआ कि जो भी नेक काम किया जाए, उसे लगातार किया जाना चाहिए। अल्लाह तआला ऐसे काम को पसन्द करता है जिसे लगातार किया जाए। हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"दीन में सबसे महबूब अमल वह है जिसे आदमी पाबन्दी से अंजाम दे।" (हदीस : बुख़ारी)

यानी हम कोई भी नेक काम करें तो उसे लगातार जारी रखें। ऐसा न हो कि एक दिन जी में आया तो बहुत-सी नेकियाँ कर लीं और फिर उकताकर छोड़ दिया, बल्कि जहाँ तक मुमकिन हो, जो भी नेकी हो सके, उसे लगातार करते रहने की कोशिश करनी चाहिए।

जब इनसान ख़ैर के काम को अहमियत देता है, तो फिर उसके नज़दीक कोई भी नेक काम छोटा नहीं रह जाता। जब वह नेक काम करता है तो फिर उसको लगातार जारी रखने का पक्का इरादा भी करता है। ये दोनों ख़ूबियाँ जब लोगों के अन्दर बैठ जाती हैं तो समाज नेकियों का गहवारा बन जाता है और पाकीज़ा माहौल में रूह को ताज़गी और दिल को ज़िन्दगी मिलती है।

सब्र और शुक्र

जब से दुनिया का वजूद है उस वक़्त से आज तक जितने भी इनसान पैदा हुए, उनको रात और दिन, धूप और छाँव की तरह, दुख-दर्द, ख़ुशी और ग़म का सामना रहा है। उनमें से बहुत-से लोग ऐसे भी हैं जो अपनी मुसीबत और परेशानियों से घबरा जाते हैं और बहुत-से लोग ख़ुशी और मसर्रत में ऐसे डूब जाते हैं कि भूल जाते हैं कि इससे पहले वे किस मुसीबत से दोचार थे और ऐसी तकब्बुरवाली हरकतें करते हैं जो अल्लाह के ग़ैज़ो-ग़ज़ब (ग़ुस्सा) की वजह बन जाती हैं। इस्लाम ज़िन्दगी के इन तमाम मामलों में इनसानों की रहनुमाई करता है। इसलिए उसने रहनुमाई की है कि वे ख़ुशी और ग़म के मौक़ों पर कैसा रवैया अपनाएँ।

सब्र और शुक्र का रवैया दोनों तरह के मौक़ों पर इनसान को संयमित और सन्तुलित ढँग से ज़िन्दगी गुज़ारने की शिक्षा देता है, जिसके लिए अल्लाह ने मुसीबत से छुटकारा और बेहतरीन बदले का वादा किया है। अल्लाह तआला ने क़ुरआन मजीद में बहुत-सी जगहों पर मुसीबतों और आज़माइशों की घटनाओं के साथ 'सब्र' और इनसानों पर अपने इनामों व एहसानों का ज़िक्र करके 'शुक्र' का हुक्म दिया है।

सब्र

सब्र के अस्ल मानी रुकने के हैं, यानी नफ़्स को घबराहट, मायूसी और दिल टूटने जैसी हालत से बचाकर सही और हक़ बात पर जमाए रखना। क़ुरआन में आमतौर पर इसका मतलब यह होता है कि बन्दा पूरे इत्मीनान के साथ अल्लाह के अह्द पर क़ायम रहे और उसके वादों पर यक़ीन रखे। आमतौर पर लोग सब्र से आजिज़ी, इन्किसारी, बेबसी और लाचारी मुराद लेते हैं। यह सही नहीं है। क़ुरआन मजीद की इस आयत से उसके अस्ल मानी का पता चलता है–

"और साबित क़दमी दिखानेवाले, सख़्ती में, तकलीफ़ में और लड़ाई

के वक़्त।"   (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-177)

इस आयत में सब्र के तीन मौक़ों का ज़िक्र किया गया है—ग़ुर्बत, बीमारी और जंग। ग़ौर कीजिए तो तमाम मुसीबतों और परेशानियों के यही तीन सबब हैं।

'सब्र' इनसान के उस सराहनीय अमल का नाम है, जिसका इज़हार अलग-अलग हालात में अलग-अलग तरीक़ों से होता है। इसकी तफ़सीलात नीचे दी जा रही हैं—

(1) किसी मुसीबत के वक़्त अपने नफ़्स पर क़ाबू रखना।

(2) जंग के मैदान में डटे रहना।

(3) बातचीत में राज़दारी का ख़याल रखना।

(4) नफ़्स को ऐशपरस्ती से महफ़ूज़ रखना।

(5) नाजाइज़ तरीक़े से ख़ाहिशों को पूरा करने से बचना।

(6) अपने नफ़्स की शराफ़त और ख़ुद्दारी का ख़याल रखना।

(7) ग़ुस्से की हालत में नफ़्स को क़ाबू में रखना।

अल्लाह तआला ने क़ुरआन मजीद में लगभग 90 जगहों पर 'सब्र' का ज़िक्र किया है और मुश्किल हालात में सब्र करने को कहा है। इनमें कुछ आयतों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

"सब्र और नमाज़ से मदद लो, और बेशक यह (नमाज़) बहुत कठिन है, किन्तु उन लोगों के लिए नहीं जो अल्लाह से डरनेवाले हैं।"   (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-45)

एक और जगह है—

"ऐ ईमान लानेवालो! सब्र और नमाज़ से मदद हासिल करो। बेशक अल्लाह उन लोगों के साथ है जो सब्र से काम लेते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-153)

जो लोग अल्लाह पर ईमान रखते हैं और उससे डरते हैं उन्हें किसी तरह

का डर नहीं होता। वे अपने हाल पर सब्र के साथ जमे रहते हैं। इसलिए इस आयत में अल्लाह ने उन्हें सब्र और नमाज़ के साथ अपनी परेशानियों के सामने डटे रहने का हुक्म दिया। सब्र का ताल्लुक़ चूँकि इनसान के अख़लाक़ व किरदार से है और नमाज़ का ताल्लुक़ इबादत से है, इसलिए अगर ये दोनों चीज़ें एक साथ शामिल रहीं तो इनसान हर परेशानी को आसानी से बरदाश्त कर सकता है।

यह मुहावरा बहुत मशहूर है कि सब्र का फल मीठा होता है। यानी इनसान अपना काम जारी रखे और उसमें किसी तरह की परेशानी पेश आए तो सब्र के साथ उसे अंजाम देता रहे तो अल्लाह ऐसे बन्दों को नवाज़ता है। सब्र नबियों की सुन्नत रही है। यही वजह है कि अल्लाह ने सब्र को इमामत का ज़रिआ क़रार देते हुए फ़रमाया है—

> "और जब वे जमे रहे और उन्हें हमारी आयतों पर विश्वास था, तो हमने उनमें ऐसे नायक (पेशवा) बनाए जो हमारे हुक्म से रास्ता दिखाते थे।" (क़ुरआन, सूरा-32 सजदा, आयत-24)

ख़ुद प्यारे नबी (सल्ल०) की पाक ज़िन्दगी का अध्ययन करें तो मालूम होगा कि आप (सल्ल०) ने अपनी ज़िन्दगी में कितनी मुसीबतें और परेशानियाँ झेलीं और उनका मुक़बला करते रहे। मक्कावालों ने आप (सल्ल०) का और आप (सल्ल०) के साथियों का बाइकाट कर दिया। नतीजतन आप (सल्ल०) ने पूरे क़बीले के साथ शेबे-अबी-तालिब (मक्का के पास एक वादी) में पनाह ली। लगातार तीन सालों तक परेशानियाँ झेलते रहे। जब वहाँ से निकले तो कुछ दिनों बाद आप (सल्ल०) के हमदर्द और ग़मख़ार चचा अबू-तालिब और उसके तीन या पाँच दिन के बाद आप (सल्ल०) की हमदर्द व ग़मगुसार शरीके-हयात उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) का भी इन्तिक़ाल हो गया। मगर इन तमाम मुसीबतों के बावजूद आप (सल्ल०) सब्र करते हुए अपने मिशन पर क़ायम रहे।

सब्र की अहमियत निम्नलिखित हदीस से भी स्पष्ट होती है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"जान लो कि सब्र के साथ कामयाबी है और मुसीबत के साथ कुशादगी है और तंगी के साथ आसानी है।"

(हदीस : मुस्तदरक अलस्सहीहैन)

अल्लाह तआला ने सब्र पर ख़ुशहाली और कुशादगी का वादा किया है। इस वादे का इन्तिज़ार अल्लाह पर भरोसे के ज़रिए से होता है। इसलिए इस इन्तिज़ार को इबादत शुमार किया जाता है। इनसान के लिए उस वक़्त सब्र करना आसान हो जाता है जब उसे यक़ीन हो कि अल्लाह उसे इस परेशानी से निकाल देगा। क़ुरआन मजीद में यही बात इन शब्दों में कही गई है—

"निश्चय ही कठिनाई के साथ आसानी भी है बेशक कठिनाई के साथ आसानी भी है।"

(क़ुरआन, सूरा-94 इनशिराह, आयतें-4 से 6)

इस बात की तरफ़ एक अरबी शायर ने इस तरह इशारा किया है—

"जब परेशानी बढ़ जाए तो सूरा-94 अलम नशरह पर ग़ौर करो। एक परेशानी दो आसानियों के बीच होती है। जब इसपर ग़ौर करोगे तो तुमको ख़ुशी होगी।"

शुक्र

'शुक्र' की तारीफ़ करते हुए अल्लामा इब्ने-क़य्यिम (रह०) फ़रमाते हैं—

"शुक्र कहते हैं अल्लाह के बन्दों पर उसकी नेमत का असर ज़ाहिर होने को। चाहे वह ज़बान के ज़रिए से हो जैसे अल्लाह की तारीफ़ की जाए, या नेमत का एतिराफ़ किया जाए, या फिर दिल के ज़रिए से हो, मुहब्बत और लगाव की वजह से, या फिर जिस्म के अंगों के ज़रिए से हो, जैसे ख़ुद को उसके सामने झुका दिया जाए या उसकी इताअत व फ़रमाँबरदारी की जाए।"

(मदारिजुस्सालिकीन, जिल्द-2, पेज-244)

शुक्र का जज़्बा इनसान के अन्दर बन्दगी को उजागर करने में मददगार साबित होता है, जो बन्दों को अल्लाह से क़रीब करता है। इसलिए जब

इनसान की परेशानी दूर हो जाए और उसे अल्लाह की तरफ़ से नेमत और राहत नसीब हो तो उसपर लाज़िम है कि वह अपने रब को न भूले, बल्कि उसका शुक्र अदा करे, जिसका इज़हार क़ौल व अमल (कथनी और करनी) दोनों से होना चाहिए। शुक्र करनेवाला बन्दा अपने रब के बहुत-से इनामों से फ़ायदा उठाता है। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"अल्लाह ने तुम्हें तुम्हारी माँओं के पेट से इस हालत में निकाला कि तुम कुछ जानते न थे। उसने तुम्हें कान, आँखें और दिल दिए, ताकि तुम शुक्रगुज़ार बनो।" (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-78)

एक और जगह अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"और याद रखो, तुम्हारे रब ने ख़बरदार कर दिया था कि अगर तुम शुक्रगुज़ार हुए तो मैं तुम्हें और ज़्यादा दूँगा, लेकिन अगर तुम नाशुक्रे साबित हुए तो निश्चय ही मेरी यातना (सज़ा) भी बहुत सख़्त है।" (क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयत-7)

इस आयत में अल्लाह तआला ने अपने शुक्रगुज़ार बन्दों को बहुत ज़्यादा नवाज़ने का वादा किया है। यह अस्ल में शुक्र का बदला है। इसके बरख़िलाफ़ नाशुक्री और नेमत की नाक़द्री करनेवाले पर सख़्त सज़ा की चेतावनी भी दी है, जो नाशुक्री की सज़ा है–

"वह उसके (हज़रत सुलैमान अलैहि० के) लिए बनाते जो कुछ वह चाहता ऊँची इमारतें, तस्वीरें, बड़े-बड़े हौज़, जैसे थाल और जमी रहनेवाली देंगे (बड़े पतीले)। ऐ दाऊद की क़ौम! अमल करो शुक्र के तरीक़े पर, मेरे बन्दों में कम ही शुक्रगुज़ार हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-34 सबा, आयत-13)

शुक्र का तरीक़ा तो यह है कि जिसपर इनाम किया गया हो वह अपने एहसान करनेवाले को भुला न डाले, वह भले काम का हुक्म देता है तो उसे अंजाम दे और उसकी मना की हुई बातों से पूरी तरह रुक जाए। क़ुरआन मजीद की दूसरी आयतों से मालूम होता है कि अल्लाह तआला ने अपने बन्दों को अपनी बेशुमार नेमतें देकर उनपर एहसान किए हैं–

"अगर तुम अल्लाह की नेमतों को शुमार करना चाहो तो तुम उनका हिसाब नहीं लगा सकते।"

(क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयत-34)

इसलिए उसकी फ़रमाँबरदारी ही उसका शुक्र है। प्यारे नबी (सल्ल॰) अल्लाह तआला का बहुत ज़्यादा शुक्र अदा करनेवाले थे। सहाबा (रज़ि॰) ने आप (सल्ल॰) की इतनी ज़्यादा इबादत देखकर सवाल किया कि आपके अगले-पिछले तमाम गुनाह माफ़ कर दिए गए हैं, आप इतनी परेशानी क्यों उठाते हैं? इसके जवाब में आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"क्या मैं शुक्रगुज़ार बन्दा न बनूँ।" (हदीस : मुस्लिम)

यह शुक्र कैसे पैदा हो? इसका तरीक़ा प्यारे नबी (सल्ल॰) ने यह बताया है कि बन्दा थोड़ी-सी चीज़ पर भी शुक्र करे, लोगों के एहसान पर उनका शुक्र अदा करे। यही जज़्बा उसे बहुत ज़्यादा शुक्र पर आमादा करेगा। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"जो थोड़े पर शुक्र नहीं करता वह ज़्यादा पर भी शुक्रगुज़ार नहीं होगा। जो लोगों का शुक्र अदा नहीं करता वह अल्लाह का भी शुक्रगुज़ार नहीं होगा। अल्लाह की नेमतों को बयान करना शुक्र है और उसका छोड़ देना कुफ़्र है। संगठन में मिलकर रहना रहमत है और अलग रहना अज़ाब है।" (हदीस : मुसनद अहमद)

इस उम्मत की सबसे बड़ी ख़ूबी और बड़ाई की बात यह है कि अल्लाह तआला ने उसके लिए हर हाल में भलाई-ही-भलाई रखी है, जबकि यह मामला किसी और क़ौम, मज़हब या मिल्लत के लिए नहीं है। दूसरे लोगों का मामला यह है कि अगर उन्हें ख़ुशी मिलती है तो मस्त हो जाते हैं, जिसके नतीजे में उल्टी-सीधी हरकत कर बैठते हैं और अगर उनको कोई तकलीफ़ पहुँचती है तो बेचैन और बेक़रार हो जाते हैं और चीख़-पुकार करने लगते हैं। जबकि मुसलमान ऐसा नहीं करता। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"मुसलमान का मामला अजीबो-ग़रीब है। उसके तमाम हालात

बेहतर हैं। यह चीज़ उसके अलावा किसी को हासिल नहीं। अगर उसे ख़ुशी मिलती है तो उसपर शुक्र करता है, जो उसके लिए बेहतर होता है। अगर कोई तकलीफ़ पहुँचती है तो उसपर सब्र करता है, यह उसके लिए बेहतर होता है।" (हदीस : मुस्लिम)

शुक्र ईमान का तक़ाज़ा

अल्लाह तआला ने बन्दे को इख़्तियार दिया है कि वह कौन-सी राह अपनाए। अगर वह शुक्र की राह अपनाएगा तो यह उसके हक़ में बेहतर होगा। इसके बरख़िलाफ़ अगर उसने इनकार की राह अपनाई तो यह उसके लिए हलाकत व बरबादी की वजह बनेगा। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"हमने उसे रास्ता दिखा दिया, चाहे शुक्र करनेवाला बने, या नाशुक्रा बने।" (क़ुरआन, सूरा-76 दह्र, आयत-3)

शुक्र इनसान के इताअत व फ़रमाबरदारी के जज़्बे को बढ़ाता है जो उसके ईमान की मज़बूती की दलील है। जब इनसान अपने परवरदिगार का शुक्र अदा करेगा तो लाज़िमी तौर पर उसके ईमान को ताक़त मिलेगी। क़ुरआन में है—

"आख़िर अल्लाह को क्या ज़रूरत है तुम्हें बेवजह सज़ा दे, यदि तुम शुक्रगुज़ार बन्दे बने रहो और ईमान की राह पर चलते रहो। अल्लाह बड़ा क़द्रदान है और सबके हाल को जानता है।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-147)

सब्र और शुक्र का ताल्लुक़

सब्र और शुक्र दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। अगर इनमें से कोई एक न रहे तो दूसरा भी लाज़िमी तौर पर नहीं रहेगा। सब्र और शुक्र की अहमियत और उनके आपसी ताल्लुक़ पर उलेमा ने रौशनी डाली है। उनके कुछ कथन नीचे दिए जा रहे हैं—

"ईमान का दारोमदार सब्र पर है। इसलिए कि सबसे बेहतरीन नेकी तक़वा (परहेज़गारी) है। और तक़वा सब्र के ज़रिए ही से हासिल

होता है।"   (एह्याओ-उलूमिद्दीन, जिल्द-4, पेज-59)

अल्लामा इब्ने-क़य्यिम (रह॰) ने फ़रमाया है—

"ईमान के दो हिस्से हैं—एक सब्र और दूसरा शुक्र।"

(इद्दतुस्साबिरीन ज़ख़ी-रतुश्शाकिरीन)

इब्ने-उयैयना (रह॰) फ़रमाते हैं—

"जिसने पाँचों वक़्त की नमाज़ अदा की उसने अल्लाह का शुक्र अदा किया।"   (तफ़सीर अल-बग़वी)

हसन बसरी (रह॰) का ख़याल है—

"वह भलाई, जिसमें किसी तरह की बुराई की मिलावट न हो, उस सलामती में है जो शुक्र के साथ हो। कितने एहसानमन्द नाशुक्रे हैं।"

फ़ज़्ल-बिन-एयाज़ (रह॰) कहते हैं—

"नेमतों पर लगातार शुक्र अदा करते रहो, इसलिए कि बहुत कम ऐसा होता है कि कोई नेमत किसी से छिन जाने के बाद दोबारा उसे मिली हो।"   (एहयाओ-उलूमिद्दीन)

जहाँ तक सब्र और शुक्र के बदले और इनाम की बात है तो क़ुरआन मजीद और हदीसों में उसको बयान किया गया है। सब्र का सबसे बड़ा बदला यह है कि अल्लाह तआला सब्र करनेवालों के साथ होता है और शुक्र पर अल्लाह तआला ने और ज़्यादा देने का वादा किया है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"अल्लाह तआला सब्र करनेवालों को बेहिसाब बदला अता करता है।"   (क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, आयत-10)

माद्दापरस्ती (भौतिकवाद) के बुरे प्रभाव

आज दुनिया बड़ी तेज़ी के साथ तरक़्क़ी के ऊँचे मक़ाम पर पहुँचने की कोशिश कर रही है। इनसान दुनिया को अपनी मुट्ठी में करने और चाँद पर घर बसाने की सोच रहा है। लेकिन दूसरी तरफ़ वह अख़लाक़ व किरदार की इतनी पस्ती में जा गिरा है कि उसे इनसान कहना मानो इनसान शब्द का अपमान है। अगर हम नैतिकता व अख़लाक़ में गिरावट की वजह पर नज़र डालें तो यह कहना ग़लत न होगा कि इनसान ख़ुदा से डरनेवाला और रहम-दिल होने के बजाय माद्दापरस्त (भौतिकवादी) हो गया है।

मालो-दौलत हासिल करना और माद्दापरस्ती दो अलग-अलग चीज़ें हैं। माल इनसान की बुनियादी ज़रूरत है। दुनिया और उसकी तमाम चीज़ें इनसानों की सुहूलत और उनकी ज़रूरत के लिए पैदा की गई हैं। मगर ख़ुद इनसान अपने मालिक की इबादत और उसकी इताअत व फ़रमाँबरदारी के लिए पैदा किया गया है। इस तरह माल हासिल करना उसकी ज़रूरत है, मगर माद्दापरस्ती अल्लाह की इबादत व इताअत के ख़िलाफ़ है।

इस हालत में इनसान अपने ख़ालिक़ और मालिक की मर्ज़ी को भुलाकर वह तमाम काम करता है जो ख़ुद उसके लिए भी नुक़्सानदेह हैं। उसको इस मिसाल के ज़रिए से बहुत आसानी से समझा जा सकता है कि नांव ख़ुशकी (ज़मीन) में तो चलती नहीं, उसे पानी पर ही चलाया जाता है, लेकिन अगर नांव में पानी भर जाए तो वह डूब जाती है।

माद्दापरस्ती वह ख़तरनाक बीमारी है जो इनसानी अख़लाक़ व किरदार और समाज पर असर डालती है। फिर वही बदअख़लाक़ और बदकिरदार शख़्स धीरे-धीरे नास्तिक (ख़ुदा के वुजूद का इनकारी) बन जाता है। और उसकी आख़िरत ख़राब हो जाती है। अल्लाह तआला ने इससे इनसान को ख़बरदार किया है और माद्दापरस्ती को धोखाधड़ी की वजह बताते हुए उससे बचने की ताकीद की है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"लोगों के लिए नफ़्स को लुभानेवाली चीज़ें, औरतें, औलाद, सोने-चाँदी के ढेर, चुने हुए घोड़े, मवेशी और खेती की ज़मीन बड़ी ख़ुशआनन्द (आकर्षक) बना दी गई हैं। मगर ये सब दुनिया की चन्द दिनों की ज़िन्दगी के सामान हैं। हक़ीक़त में जो बेहतर ठिकाना है, वह तो अल्लाह के पास है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले इमरान, आयत-14)

माद्दापरस्ती ने इनसान के अख़लाक़ व किरदार पर बुरी तरह असर डाला है, जिससे पूरे समाज में बिगाड़ पैदा हो गया है। इनसान हर चीज़ में भौतिक फ़ायदे को सामने रखकर उसे हासिल करने की कोशिश कर रहा है। माद्दापरस्त इनसान भौतिक विकास और ज़्यादा-से-ज़्यादा माल व दौलत हासिल करने को ज़िन्दगी की अस्ल तरक़्क़ी समझने लगता है, चाहे वह ख़ुदा के उसूलों, इनसानी रिश्तों और नैतिक (अख़लाक़ी) मूल्यों के ख़िलाफ़ ही क्यों न हो।

कहा जाता है कि अगर इल्म आम हो जाए, लोग ज़्यादा-से-ज़्यादा पढ़े-लिखे हो जाएँ तो समाजी ज़िन्दगी बेहतर हो जाएगी। मगर यह बात सच्चाई से परे मालूम होती है। इस दौर में इल्म पहले के मुक़ाबले में ज़्यादा आम है। शिक्षा का ग्राफ़ बढ़ रहा है। मगर अख़लाक़ और किरदार का ग्राफ़ नीचे जा रहा है। इसकी बुनियादी वजह यही है कि यहाँ नैतिक (अख़लाक़ी) शिक्षा पर कम और माद्दापरस्ती और भौतिक शिक्षा पर ज़्यादा ज़ोर दिया जा रहा है। मानो तालीमी इदारे इनसानों को मशीन बनाने की फैक्ट्रियाँ हैं, जहाँ इनसानी जज़्बात नहीं होते, बल्कि उनमें ज़्यादा-से-ज़्यादा दौलत कमाने के गुर सिखाए जाते हैं। अल्लामा इक़बाल (रह०) ने माद्दापरस्ती के ग़लबे को देखते हुए उसकी ख़राबी को कुछ इस तरह पेश किया है—

यूरोप में बहुत रौशनी-ए-इल्मो-हुनर है,
हक़ यह है कि बे चशमा-ए-हैवाँ है यह ज़ुलमात।
यह इल्म, यह हिकमत, यह तदब्बुर, यह हुकूमत,
पीते हैं लहू, देते हैं तालीमे-मसावात।

समाज में झूठ, रिश्वत, धोखाधड़ी, लूट-खसोट और अधिकारों का हनन इसी माद्दापरस्ती के करिश्मे हैं। कल तक लोग ग़रीबों की मदद के लिए आगे आते थे, उनकी ज़रूरतों को पूरा करना अपना फ़र्ज़ समझते थे। ग़रीबों को खाना देने के बाद ही खाते थे। हर एक से बातचीत करते वक़्त नर्म लहजा अपनाते थे, इससे उनके अख़लाक़ व किरदार की अच्छाई का पता चलता था। मगर अब हाल यह है कि लोग ग़रीबों का शोषण करते हैं। मज़दूरों का ख़ून चूस लेने के बाद भी उनको पूरी मज़दूरी नहीं देते। रिश्तेदारी निभाना तो दूर अपने माँ-बाप पर ख़र्च करने को भी अपना नुक़सान समझने लगते हैं, जबकि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की हिदायतें ये हैं कि बातचीत में नर्मी रखी जाए, मज़दूरों को उनका पसीना सूखने से पहले मज़दूरी दे दी जाए, किसी पर ज़ुल्म न किया जाए, किसी के साथ धोखा न किया जाए, माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक किया जाए। ये वह नैतिक (अख़लाक़ी) शिक्षाएँ हैं, जिन्हें अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने ईमान का हिस्सा क़रार दिया है।

भौतिकवाद ने इनसान को ख़ूँख़ार हैवान बना दिया है। बच्चों का अपहरण करना, उसके बदले उनके माँ-बाप से भारी रक़म की माँग करना, उनके हाथ-पैर काटकर उनसे भीख मँगवाना, ये सारे काम मालो-दौलत को हासिल करने और माद्दापरस्ती के जज़्बे से ही अंजाम दिए जाते हैं।

डॉक्टरी की शिक्षा हासिल करने का मक़सद आम लोगों को इलाज के ज़रिए से बीमारियों से छुटकारा दिलाना है। मगर इस माद्दापरस्ती ने डॉक्टरों पर भी ऐसा जादू किया है कि वे अपने मक़सद को भूल जाते हैं। और मरीज़ों के साथ एक जल्लाद की तरह मामला करते हैं। वे न सिर्फ़ यह कि इलाज के नाम पर उनके ख़ून-पसीने की कमाई को चूस लेते हैं, बल्कि कभी-कभी तो उनका ग़ैर-ज़रूरी ऑपरेशन करके उनके गुर्दे तक निकाल लेते हैं।

माद्दापरस्ती ने औरतों को भी अपने झाँसे में ले लिया है और उन्हें भविष्य के सुहावने सपने दिखाकर समाज में ज़लील और रुसवा किया जा रहा है। जिसकी वजह से शादी-शुदा ज़िन्दगी में कड़वाहट भरती जा रही है। औरतों की आज़ादी और उन्हें बराबरी का दर्जा दिए जाने के लुभावने जाल में फँसकर औरतें सरेआम अपने जिस्म की नुमाइश करती फिर रही हैं।

मामूली-मामूली चीज़ों पर उनकी अश्लील तस्वीरें इस बात का खुला सुबूत हैं। बड़े-बड़े होटलों में कुछ सिक्कों के बदले उनकी इज़्ज़तो-आबरू से खिलवाड़ किया जाता है।

माद्दापरस्ती के इस ग़लबे ने इनसान को अंधा, गूँगा और बहरा बना दिया है। आँखों को चुँधिया देनेवाली दुनिया की लुभावनी चीज़ों ने माद्दापरस्ती में इतना ज़्यादा इज़ाफ़ा किया है कि इनसान अपना चैन व सुकून खो बैठा है। उसके पास न समय है, न सोचने के लिए दिमाग़! जीवन स्तर को ऊँचे-से-ऊँचा करने के ख़याल ने उसे बेहाल और दुखी कर दिया है। उसे ग़म है तो सिर्फ़ इस बात का कि वह दूसरों की तरह अमीर क्यों नहीं है? जबकि वह भूल गया है कि इस दुनिया के बनानेवाले अल्लाह की हर वक़्त उसपर निगाह है। अगर इनसान यह समझता है कि मालो-दौलत के समेटने से उसे समाज में इज़्ज़त हासिल हो जाएगी और उससे वे हर तरह की राहत और इत्मीनान ख़रीद सकता है, तो यह ख़याल वहम व गुमान है।

आज अगर इनसानों को सुकून व इत्मीनान नसीब हो सकता है तो वह मालो-दौलत इकट्ठा करके और माद्दापरस्ती में डूबकर नहीं, बल्कि अपने अख़लाक़ व किरदार को सँवारकर और दूसरे इनसानों के हक़ अदा करके ही वे इसे हासिल कर सकते हैं।

भाईचारे के तक़ाज़े

समाज को पुरअम्न व मज़बूत बनाने के लिए ज़रूरी है कि मुसलमानों का आपसी रिश्ता बहुत गहरा हो। ऐसा न हो कि एक मुसलमान ख़ुद में मग्न रहे और अपने लिए तो बेहतरी की तमन्ना करे, मगर दूसरों से कोई ताल्लुक़ न रखे और उनके साथ हमदर्दी और मुहब्बत के साथ बिलकुल पेश न आए, जबकि क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने ईमानवालों का आपसी रिश्ता बिलकुल साफ़ बयान कर दिया है कि वे आपस में भाई-भाई हैं। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

> "ईमानवाले तो एक-दूसरे के भाई हैं, लिहाज़ा अपने भाइयों के बीच ताल्लुक़ात को दुरुस्त करो और अल्लाह से डरो, उम्मीद है कि तुमपर रहम किया जाएगा।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-10)

एक मुसलमान का ताल्लुक़ दूसरे मुसलमान से भाईचारे की बुनियाद पर होता है। हालाँकि यह रिश्ता नस्ल व ख़ानदान की बुनियाद पर नहीं होता, इसके बावजूद भी ईमान का रिश्ता ऐसा मज़बूत होना चाहिए कि आदमी अपने मुसलमान भाई की तकलीफ़ को अपनी तकलीफ़ महसूस करे। उसकी जान, माल और इज़्ज़त की हिफ़ाज़त करे। उसपर ज़ुल्म को ऐसा माने जैसे ख़ुद अपने ऊपर ज़ुल्म हुआ हो। यही ईमान का तक़ाज़ा है।

इस्लाम ने मुस्लिम उम्मत को 'एक जिस्म' क़रार दिया है और बताया है कि एक जिस्म के अलग-अलग अंग का जिस तरह आपसी मेल व ताल्लुक़ होता है कि उसके किसी एक अंग को तकलीफ़ पहुँचे तो सारा जिस्म तकलीफ़ महसूस करता है। ठीक उसी तरह एक मुसलमान को, चाहे वह किसी भी देश का हो, ज़ुल्मो-अत्याचार का निशाना बनाया जाए, वह मज़लूमियत और तकलीफ़-भरी ज़िन्दगी जीने पर मजबूर हो, तो उसके दर्द को महसूस किया जाए और उसपर ज़ुल्म के ख़ातिमे के लिए पूरी-पूरी कोशिश की जाए। ईमानवालों के बीच इस रिश्ते को स्पष्ट करते हुए

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"अह्ले-ईमान की मिसाल आपसी हमदर्दी, मुहब्बत और उलफ़त व इनायत में एक जिस्म की तरह है कि जब उसके किसी अंग को कोई तकलीफ़ होती है तो सारा जिस्म सख़्त बेचैन हो जाता है और बुख़ार में तपने लगता है।" (हदीस : मुस्लिम)

अल्लामा इब्ने-तैमिया (रह॰) ने इस हदीस की तशरीह करते हुए कहा है—

"यही वजह है कि मुसलमान को दूसरे मुसलमान भाइयों की ख़ुशी से ख़ुशी होती है और उनकी तकलीफ़ से वह भी तकलीफ़ महसूस करता है। जिसके अन्दर यह हालत न हो वह मुसलमान नहीं है। उनकी एकता अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान और मुहब्बत की बुनियाद पर क़ायम होती है।" (मजमूउल-फ़तवा, जिल्द-2, पेज-373)

यह रिश्ता ईमान के पूरा होने के लिए ज़रूरी है और इस ताल्लुक़ में कोताही मानो ईमान में कमी की पहचान है। उसकी पासदारी के लिए ज़रूरी है कि एक मुसलमान अपने लिए जिस चीज़ को पसन्द करता है वही अपने भाई के लिए भी पसन्द करे। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तुममें से कोई आदमी उस वक़्त तक पूरा मुसलमान नहीं हो सकता जब तक वह दूसरों के लिए भी वही चीज़ पसन्द न करे जो अपने लिए पसन्द करता है।" (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस में समाज के सुधार व कामयाबी के लिए एक बुनियादी उसूल बताया गया है। वह यह है कि हर आदमी के अन्दर अपनी बेहतरी और भलाई के साथ दूसरों की भलाई और ख़ैरख़ाही का भी जज़्बा होना चाहिए।

अगर हम अपना एक उसूल बनाएँ कि हमें इस्लामी भाईचारे को क़ायम रखना है, किसी भी सूरत में उसमें कमी नहीं होने देना है तो उसके लिए कुछ बातों पर अमल करना पड़ेगा। मिसाल के तौर पर अगर किसी बात में असहमति और मतभेद हो जाए और हालात बिगड़ जाएँ तो तीन दिन से ज़्यादा के लिए किसी से ताल्लुक़ न तोड़ें। ग़ीबत, झूठ, ख़ियानत, धोखाधड़ी,

जलन जैसी नीच हरकतों से बचें। किसी को अपने से कमतर न समझें। किसी का मज़ाक़ न उड़ाएँ। किसी का राज़ फ़ाश न करें। किसी को बुरे नाम या लक़ब से न पुकारें। हरेक से मुहब्बत करें और माफ़ करने की आदत डालें।

इस्लामी भाईचारे के ताल्लुक़ से प्यारे नबी (सल्ल॰) ने साफ़ तौर पर फ़रमाया—

> "मुसलमान मुसलमान का भाई है, न तो वह उसपर ज़ुल्म करता है और न उसे बेयारो-मददगार छोड़ता है। जो शख़्स अपने भाई की ज़रूरत पूरी करेगा अल्लाह उसकी ज़रूरत पूरी करेगा। जो किसी मुसलमान की एक परेशानी को दूर करेगा अल्लाह तआला क़ियामत की परेशानियों में से उसकी एक परेशानी दूर कर देगा और जो मुसलमान की परदापोशी (ऐब छुपाना) करेगा अल्लाह तआला क़ियामत के दिन उसकी पर्दापोशी (ऐब छुपाना) फ़रमाएगा।"
>
> (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस से मालूम हुआ कि एक मुसलमान को अपनी ही तरह दूसरे मुसलमान की हिफ़ाज़त करनी है और उसकी ज़रूरतों का ख़याल रखना है। इस काम में खुद उसी का फ़ायदा है, क्योंकि उसके बदले में अल्लाह तआला उसका ख़याल रखेगा। अगर वह दूसरों का ख़याल रखेगा और उसकी परदापोशी (ऐब छुपाना) करेगा तो खुदा भी उसकी परदापोशी (ऐब छुपाना) करेगा। अगर मुसलमान अपने ऊपर अपने मुसलमान भाई को अहमियत देने लगे या कम-से-कम अपनी ही तरह उसकी भलाई भी चाहे, तो उसके नतीजे में उसके अन्दर की बहुत-सी ख़राबियाँ और अख़लाक़ी गिरावटें खुद-ब-खुद ख़त्म हो जाएँगी।

मुस्लिम दुनिया के स्तर पर मुसलमानों की ख़राब हालत को देखते हुए ईमानी भाईचारे की बुनियाद पर अगर बेचैनी महसूस होती है तो यह यक़ीनी तौर पर ईमान की दलील है। आज मुसलमानों में दूसरों की परेशानियों को अपनी परेशानी समझकर हल करने और एक-दूसरे के साथ ख़ैरख़ाही करने

का जज़्बा ख़त्म होता नज़र आ रहा है। आज क़ौमी और आलमी स्तर पर मुसलमान एक-दूसरे से कटे हुए महसूस होते हैं। उनका आपसी रिश्ता कमज़ोर-सा मालूम होता है। सरकारी सतह पर तो यह भाईचारा और भी कमज़ोर हो गया है। इतिहास को सामने रखें तो हमें मालूम होगा कि कुछ मज़लूम, बेबस अरब मुस्लिम महिलाओं पर हाकिम दाहिर के लोगों ने ज़ुल्म किया। उनकी पुकार समुद्र के उस पार हज्जाज-बिन-यूसुफ़ तक पहुँची, जिसने उसको दहलाकर रख दिया। इसलिए उसने मुहम्मद-बिन-क़ासिम की सरदारी में एक फ़ौज भेजी जिसने न केवल उन महिलाओं को उन ज़ालिमों के चंगुल से आज़ाद कराया, बल्कि सिंध को फ़तह भी किया।

अगर मुसलमानों के अन्दर ईमानी हमिय्यत, ग़ैरत और इस्लामी भाईचारा होगा तो वे दुनियावालों की निगाह में मज़बूत और ताक़तवर होंगे। वे एक जिस्म की तरह समझे जाएँगे चाहे दुनिया के किसी भी कोने में हों। फिर दुश्मन उन्हें सूई भी चुभोने से पहले सौ बार सोचेंगे। फिर वे न सिर्फ़ अपने ऊपर ज़ुल्म के ख़िलाफ़ खड़े होंगे, बल्कि वे आम इनसानों पर भी ज़ुल्म को सहन नहीं करेंगे और हर मुमकिन इनसाफ़ क़ायम करने की कोशिश करेंगे। लेकिन अगर उनका आपसी रिश्ता मज़बूत न होगा तो दुश्मन उनके साथ जैसा मामला चाहेगा, करेगा। उन्हें चूँटियों की तरह रौंदेगा और गाजर-मूली की तरह काटेगा और दूसरे तमाम मुसलमान ख़ामोश तमाशाई बने रहेंगे।

यकसाँ पैमाने

मौजूदा दौर में अगर हम अपने समाज का जायज़ा लें तो हमें एक चीज़ साफ़ तौर पर नज़र आती है। वह यह कि लोगों ने दो पैमाने बना रखे हैं— एक पैमाना अपने लिए और दूसरा पैमाना दूसरों के लिए। वे अपने लिए किसी और चीज़ की ख़ाहिश रखते हैं और दूसरों के लिए कुछ और चाहते हैं। अपने लिए तो यह पसन्द करते हैं कि दूसरे लोग उनके साथ अच्छा बरताव करें, लेकिन वे खुद दूसरों के साथ अच्छा सुलूक नहीं करते। वे चाहते हैं कि दूसरे लोग उनका ख़ूब ख़याल रखें, लेकिन वे खुद दूसरे लोगों का ज़रा भी ख़याल नहीं रखते और उनके साथ भाईचारे और नर्मी के साथ बिलकुल पेश नहीं आते। यही वजह है कि समाज में लूट-खसोट, रिश्वत, बददियानती, झूठ, धोखाधड़ी और जालसाज़ी आदि नैतिक (अख़लाक़ी) बीमारियाँ आम हैं। इस्लाम ने एक आदर्श और शान्तिपूर्ण समाज के लिए समान रवैये को ज़रूरी क़रार दिया है और उसे ईमान की ख़ास ख़ूबी क़रार दिया है।

जो आदमी अल्लाह के किसी बन्दे की ज़रूरत पूरी करता है वह अल्लाह का बेहद महबूब होता है। क़ियामत के दिन अल्लाह ऐसे खुद-ग़रज़ और बेहिस लोगों से पूछ-गछ करेगा जिन्होंने अपनी ज़िन्दगी बनाने, सँवारने और खुशगवार बनाने में दूसरे मुहताजों की बुनियादी ज़रूरतों को नज़रअन्दाज़ कर दिया हो और उन्हें बेयारो-मददगार छोड़ दिया हो। नबी (सल्ल॰) ने कहा—

> "अल्लाह तआला क़ियामत के दिन कहेगा, ऐ आदम की औलाद! मैं बीमार था, तूने मेरी मिज़ाजपुर्सी नहीं की, बन्दा कहेगा, ऐ परवरदिगार! मैं तेरी मिज़ाजपुर्सी कैसे कर सकता था, तू तो सारे जहान का पालनेवाला है? अल्लाह तआला कहेगा, तुझे मालूम नहीं कि मेरा फ़ुलाँ बन्दा बीमार था, तूने उसकी मिज़ाजपुर्सी नहीं की। अगर तू उसकी मिज़ाजपुर्सी करता, तो उस वक़्त मुझे उसके पास पाता। ऐ आदम की औलाद! मैंने तुझसे खाना माँगा था, तूने मुझे

खाना नहीं खिलाया। बन्दा कहेगा, ऐ परवरदिगार! मैं तुझे कैसे खिला सकता था, जबकि तू सारे जहान का पालनहार है? अल्लाह तआला कहेगा, तुझे पता नहीं, मेरे फ़ुलाँ बन्दे ने तुझसे खाना माँगा था, मगर तूने उसे खाना नहीं खिलाया। अगर तू उसे खाना खिलाता तो उस वक़्त मुझे उसके पास पाता। ऐ आदम की औलाद! मैंने तुझसे पानी माँगा था, मगर तूने मुझे पानी नहीं पिलाया। बन्दा कहेगा, ऐ परवरदिगार! मैं तुझे कैसे पिला सकता था, तू तो सारे जहान का पालनहार है? अल्लाह तआला कहेगा, तुझसे मेरे फ़ुलाँ बन्दे ने पानी माँगा था, मगर तूने उसे नहीं पिलाया था, याद रख, अगर तूने उसे पानी पिलाया होता तो मुझे उस वक़्त वहाँ पाता।" (हदीस : मुस्लिम)

आज मुस्लिम समाज का भी यही हाल हो गया है। मुसलमान ख़ुद तो चाहते हैं कि उन्हें किसी तरह का नुक़सान न पहुँचे, मगर वे दूसरों को नुक़सान पहुँचाने में कोई क़सर नहीं छोड़ते। मिसाल के तौर पर क़ुरआन ने नाप-तौल के मामले मे चेतावनी देते हुए उसे हलाकत व बरबादी की वजह बताया है—

"तबाही है डण्डी मारनेवालों के लिए (बुरा हो नाप-तौल में कमी करनेवालों का) जिनका हाल यह है कि जब लोगों से लेते हैं तो पूरा-पूरा लेते हैं, और जब उनको नापकर या तौलकर देते हैं तो उन्हें घाटा देते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-83 मुतफ़्फ़िफ़ीन, आयतें-1 से 3)

जब हम अपने लिए नुक़सान बरदाश्त नहीं कर सकते तो फिर हमें दूसरों के नुक़सान की भी इच्छा नहीं करनी चाहिए। एक कहावत मशहूर है कि "जो दूसरों के लिए गढ़ा खोदता है वह ख़ुद गढ़े में गिरता है।"

चूँकि आज हमारा समाज इन अख़लाक़ी बीमारियों का शिकार है, इसलिए सब कुछ होते हुए भी वह परेशानियों और मुसीबतों का शिकार है। लोग एक दूसरे की शिकायत करते हैं, हर आदमी को बुरा-भला कहते हैं और दूसरों की इज्जत व नामूस का बिलकुल ख़याल नहीं रखते और उनकी कमज़ोरियाँ मज़े ले-लेकर बयान करते हैं, जबकि वही लोग इस बात को

पसन्द नहीं करते कि दूसरे लोग उनकी बुराइयाँ करें। शैख़ सादी (रह०) ने ऐसे मौक़े के लिए बड़ी हिकमत की बात कही है—

"जो आदमी तुम्हारे सामने किसी की बुराई कर रहा होता है, वह यक़ीनन किसी और के सामने तुम्हारी भी बुराई करेगा।"

इस्लाम समाज के अन्दर रहनेवालों के बीच आपसी मुहब्बत और भाईचारा देखना चाहता है। इसी लिए अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने ऐसे कामों को करने पर ज़ोर दिया है जिनसे आपस में मुहब्बत पैदा हो। एक बड़े सहाबी हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-सलाम (रज़ि०) बयान करते हैं कि जब प्यारे नबी (सल्ल०) मदीना तशरीफ़ लाए तो दूसरे लोगों के साथ मैं भी आप (सल्ल०) को देखने के लिए गया। सबसे पहली बात जो मैंने आप (सल्ल०) की मुबारक ज़बान से सुनी वह यह थी—

"ऐ लोगो! सलाम को आम करो, लोगों को खाना खिलाओ, रहम (दया) का मामला करो, जब लोग सो रहे हों तो नमाज़ (तहज्जुद) पढ़ो और जन्नत में सलामती के साथ दाख़िल हो जाओ।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

शुरू में बयान की गई तीनों चीज़ें समाज की बेहतरी और लोगों के अख़लाक़ व किरदार को सँवारने या यूँ कहें कि इनसानों के हक़ व अधिकारों के बारे में हैं। ग़रीबों को खाना खिलाया जाए, उनकी ज़रूरतों का ख़याल रखा जाए, उनकी मिज़ाजपुर्सी की जाए, सलाम को आम किया जाए और सिलारहमी (रिश्तों को जोड़ने) का रिवाज हो। इसलिए कि इससे उम्मत आपस में घुल-मिलकर रहेगी और सीसा-पिलाई हुई दीवार की तरह मज़बूत होगी।

चौथी बात यह कही गई है कि रात के आख़िरी हिस्से में नमाज़ (तहज्जुद) पढ़ा करो, ताकि अल्लाह से क़रीब हो जाओ, साथ ही अन्य मामले (इबादत और मामलात) भी बग़ैर किसी लालच के केवल अल्लाह के लिए हो जाएँ। आख़िर में इसका नतीजा बयान किया गया है कि जब तुम ऐसा करोगे, तो जन्नत में सलामती के साथ दाख़िल हो जाओगे।

आपसी सहमति बुराई के लिए दलील नहीं है

कायनात के रब ने इनसान को वुजूद बख़्शा तो उसकी तमाम बुनियादी ज़रूरतें भी पूरी कीं। रही बात जिन्सी ख़ाहिश (यौन-इच्छा) की तो यह केवल इनसानी ज़रूरत नहीं, बल्कि समाज के निर्माण एवं विकास का ज़रिआ भी है। उसके लिए हैवानों जैसा असभ्य तरीक़ा नहीं बताया, बल्कि समाज के सामने दो गवाहों की मौजूदगी में निकाह का तरीक़ा बताया। इसके बाद मियाँ-बीबी की एक-दूसरे के सिलसिले में ज़िम्मेदारियाँ मुक़र्रर कर दीं। मर्दों को ताक़तवर बनाकर उन्हें औरत की हिफ़ाज़त और किफ़ालत (भरण-पोषण) की ज़िम्मेदारी दी तो औरतों को बच्चों की देखभाल और घर की दूसरी ज़िम्मेदारियाँ दीं। फिर इन दोनों को आवारगी व बेराहरवी से बचने के लिए कुछ सामाजिक और अख़लाक़ी उसूल भी बताए, जिनके दायरे में रहकर वे अपनी संयुक्त (मिली-जुली) कोशिशों से आदर्श समाज को परवान चढ़ाएँ, ताकि अम्न व अमान का वातावरण बने और तरक़्क़ी की राहें हमवार हों।

मगर इनसान जब क़ुदरती नियमों, फ़ितरी मूल्यों और सामाजिक उसूलों से ऊपर उठकर सिर्फ़ अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ ज़िन्दगी बसर करने लगा तो वह न सिर्फ़ ख़ुद मुश्किलों से दोचार हुआ, बल्कि दूसरों के लिए भी मुसीबत की वजह बनकर समाज की तबाही व बरबादी की वजह बना।

इनसान की एक बुनियादी ज़रूरत जिन्सी ख़ाहिश (यौन-इच्छा) का पूरा होना है। उसके लिए ईश्वरीय उसूलों को ताक़ पर रखकर व्यभिचार व बदकारी की राह चुनना, फिर उसके जाइज़ होने में आपसी सहमति (रज़ामन्दी) और मर्ज़ी को दलील के रूप में पेश करना, समाज का एक नासूर बन गया है। इस लिहाज़ से देखा जाए तो आपसी रज़ामन्दी से बदकारी, जिसे समाज और क़ानून ने 'लिव इन रिलेशनशिप' का नाम देकर उसे

जाइज़ तो बना दिया है, लेकिन वास्तव में वह बलात्कार से भी अधिक ख़तरनाक है, क्योंकि वह आसानी से चोर दरवाज़े से समाज को अपने चंगुल में ले लेता है। फिर वही तरीक़ा रिवाज पाकर बलात्कार की राह हमवार कर देता है, इससे उसकी संगीनी का बख़ूबी अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

इस्लामी अहकाम का जाइज़ा लिया जाए तो मालूम होता है कि इस्लाम ने हर उस तरीक़े को नापसन्दीदा और अपराध क़रार दिया है जिससे इनसानियत का नुक़सान हो और समाज की व्यवस्था तहस-नहस हो जाए। चाहे इनसान वह हरकत अपनी मर्ज़ी और आपसी सहमति से ही क्यों न करे। इसी लिए इस्लाम ने इनसान को अपनी मर्ज़ी का नहीं, बल्कि अल्लाह के अहकाम का पाबन्द बनाया है और कहा है कि इसी में उसकी भलाई है।

वैवाहिक सम्बन्ध के बिना मर्द-औरत का आपस में जिन्सी ख़ाहिश (यौन-इच्छा) का पूरा करना, चाहे आपसी सहमति से हो, या ज़ोर-ज़बरदस्ती से 'व्यभिचार' कहलाएगा जिसे इस्लाम ने खुली बेहयाई और अपराध क़रार दिया है। अलबत्ता जिससे ज़ोर-ज़बरदस्ती की गई है, उसकी पकड़ न होगी। व्यभिचार की ख़राबी और संगीनी बयान करते हुए अल्लाह कहता है—

> "व्यभिचार के क़रीब मत फटको वह बहुत बुरा काम (खुली बेहयाई) और बड़ा ही बुरा रास्ता है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-32)

इस आयत में इनसानों को उस बुरे काम को करना तो छोड़िए, व्यभिचार के प्रेरक तत्वों (ज़िना पर उभारनेवाले कामों) से भी दूर रहने का हुक्म दिया गया है। इसलिए इस्लाम अजनबी औरतों से मेल-जोल, ग़ैर-ज़रूरी बातें और साथ उठने-बैठने से बचने की ताकीद करता है। क्योंकि यही वे चीज़ें हैं जो इनसान को व्यभिचार और अश्लील हरकतें करने पर उभारती हैं। आपसी सहमति से अंजाम दी जानेवाली ये बुराइयाँ इनसान को एक दिन ज़ोर-ज़बरदस्ती तक पहुँचा देती हैं।

जिस तरह ख़ूबसूरत पैकेट में कोई बुरी और गन्दी चीज़ रख दी जाए तो वह अच्छी नहीं हो जाती, उसी तरह मर्ज़ी या आपसी सहमति से किसी

अपराध के कर गुज़रने से वह सही और तारीफ़ के क़ाबिल काम नहीं हो सकता। हमारे प्यारे देश भारत में कुछ लोगों का मानना है, जिसे सरकार भी क़बूल करती है कि आपसी सहमति से अगर जिन्सी अमल (यौन-इच्छा की पूर्ति) अंजाम दिया जाए जो वह अपराध नहीं है। दलील के तौर पर यह कहा जाता है कि दो लोगों की सहमति से दूसरों को क्या परेशानी है?

विचार करने की बात है कि केवल आपसी सहमति को दलील बनाकर क्या कोई अपराध किया जा सकता है? यदि जवाब सकारात्मक हो तो फिर इनसान बहुत-सी मुश्किलों में फँस सकता है और इनसानी ज़िन्दगी तबाह व बरबाद हो सकती है। इस बात को समझने और समझाने के लिए बहुत-सी मिसालें पेश की जा सकती हैं।

एक नाव जो दरिया में चल रही हो, उसमें छोटा-सा छेद (सूराख़) हो जाए, जिसको बन्द करना बहुत ज़्यादा मुश्किल न हो तो उसपर सवार लोगों को सुरक्षित रखने के लिए उस सूराख़ को बन्द करना बहुत ज़रूरी होता है। अगर कोई उसे बन्द न करे, बल्कि उसमें सवार मुसाफ़िरों में से दो लोग यह कहें कि हम दोनों ने आपसी सहमति से उसमें छेद किया है, इसी लिए किसी को इसे बन्द करने की इजाज़त नहीं है और न किसी को कुछ कहने का हक़ है, तो क्या उनकी मर्ज़ी पर रोक लगाने के बदले सारे लोग डूबने के लिए तैयार हो जाएँगे? नहीं! बल्कि मामूली दर्जे का अक़्ल रखनेवाला भी इन दोनों से उलझ पड़ेगा और सूराख़ बन्द करने की कोशिश करेगा।

इसी तरह हम लोग रेल या अन्य सवारियों पर सफ़र करते हैं, और जिसके लिए टिकट ख़रीदते हैं। अगर कोई व्यक्ति बिना टिकट सफ़र करे और यह दलील दे कि मैंने टी॰टी॰ से सेटिंग कर ली है, फिर दूसरे यात्रियों या रेल विभाग को क्या परेशानी है? तो क्या उसकी बात मानी जाएगी। और उसका यह काम अपराध नहीं माना जाएगा? अगर नहीं! तो फिर आज से ही तमाम लोगों को सहमति के अनोखे तरीक़े के साथ बिना टिकट सफ़र करने की इजाज़त मिलनी चाहिए। ऐसे में क्या रेल विभाग या ट्रांसपोर्ट विभाग चल सकेगा? उसके ख़र्चे पूरे हो सकेंगे? यह तो एक विभाग का मामला है जो ऊपर दिए गए इस उसूल पर नहीं चल सकता। तो पूरे समाज

की व्यवस्था केवल दो लोगों की आपसी सहमति से कैसे चल सकती है। आज ख़ुदपसन्दी और अपनी मर्ज़ी की पैरवी ने इनसानों को तबाही के ऐसे मोड़ पर ला खड़ा किया है कि उनके दिल से अपराध का एहसास ही निकल चुका है। समाज के वुजूद और उसकी हिफ़ाज़त की बातों से उनकी आज़ादी में रुकावट महसूस की जाने लगी है। इनसान का स्वभाव है कि वह अच्छा काम करे और बुरे काम से बचे। यही वजह है कि उसे ख़ुशबू से प्यार और बदबू से नफ़रत होती है। समाज में कोई व्यक्ति गन्दगी फैलाए, या कोई मुर्दा जानवर को अपने ही दरवाज़े के सामने रखे, जिससे कि बदबू फैल जाए और रोकने पर वह कहे कि यह मेरी मर्ज़ी है मैं जैसे चाहूँ रहूँ, जो चाहे करूँ, तुम्हारे घर में तो मैंने गन्दगी नहीं डाली है फिर तुम्हें क्या परेशानी है? तो क्या उसकी यह दलील मान ली जाएगी और उसे यूँ ही छोड़ दिया जाएगा?

ठीक उसी तरह आपसी सहमति से क़ायम किया गया जिन्सी ताल्लुक़ (यौन सम्बन्ध) केवल दो इनसानों का काम नहीं है या उसमें केवल दो लोगों की मर्ज़ी पर बदकारी को बढ़ावा नहीं दिया जा सकता, बल्कि जब यह महामारी आम होगी तो फिर ज़ोर-ज़बरदस्ती और हिंसा का माहौल जन्म लेगा जिसके नतीजे में इनसानियत का ख़ातिमा हो जाएगा।

आज महिलाओं के बलात्कार और उनकी हत्या की घटनाओं ने भयानक रूप अपना लिया है। ज़ाहिर है यह सब अचानक नहीं हो गया है, बल्कि ग़लत तरीक़ों और अश्लीलता के बढ़ावे ने ऐसा माहौल बना दिया है। फिर भी लोग बदकारी के प्रेरक तत्वों (ज़िना पर उभारनेवाले काम) एवं कारणों की पकड़ करने के बदले उनकी वकालत करते हैं। इस क़िस्म के लोगों की पकड़ करने के बजाय उन्हें और भी खुली आज़ादी दी जा रही है और क़ानूनी सुरक्षा उपलब्ध कराकर बेहयाई को बढ़ावा दिया जा रहा है। इन हालात में न सिर्फ़ समाज टूट-फूट का शिकार होगा, बल्कि देश भी तेज़ी से पतन का शिकार हो जाएगा।

अगर इस बुरे काम की रोक-थाम न की गई तो यह भयानक रूप ले लेगा, फिर समाज पर उसके बदतरीन असरात पड़ेंगे और एड्स जैसी ख़तरनाक बीमारी फैल जाएगी। ग़रीबी और भुखमरी की हालत इसी से पैदा

होती है। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने इस बुरे काम के नुक़सानात और असरात से ख़बरदार कर दिया था। इसकी बुराई बयान करते हुए आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिस क़ौम में व्यभिचार और सूदख़ोरी आम हो जाएगी, उसमें अल्लाह का अज़ाब आना लाज़मी है।" (हदीस : बैहक़ी)

एक और जगह आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिस क़ौम में एलानिया अश्लीलता का बाज़ार गर्म हो जाए उसमें ताऊन और उसी जैसी दूसरी बीमारियाँ हो जाएँगी, जो इससे पहले कभी नहीं थीं।" (हदीस : इब्ने-माजा)

यही वजह है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने मुसलमानों को इस अश्लीलता से डराते हुए दुनिया और आख़िरत में इसके बुरे अंजाम से आगाह किया था। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"ऐ मुसलमानो की जमाअत! व्यभिचार से बचो, इसलिए कि उसके नतीजे में 6 परेशानियाँ मिलती हैं। तीन दुनिया में, और तीन आख़िरत में। तीन दुनियावी परेशानियाँ ये हैं—(1) चेहरे की रौनक़ ख़त्म होना, (2) भुखमरी (3) उम्र की तंगी। आख़िरत में होनेवाली तीन परेशानियाँ ये हैं—(1) अल्लाह की नाराज़गी, (2) बदतरीन हिसाब-किताब (3) जहन्नम में हमेशा रहना।

ख़ुलासा यह है कि जब इनसान इस प्राकृतिक सामाजिक व्यवस्था से बग़ावत करेगा और मनचाही ज़िन्दगी बसर करेगा तो उसे मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा। वह प्रकृति की जीवन-व्यवस्था को नकारते हुए अपने बनाए हुए तरीक़ों पर चलेगा तो हमेशा नई समस्याओं से दोचार होगा। अगर उस पर रोक न लगाई गई तो पूरा समाज तबाह व बरबाद हो जाएगा और कोई उसे बचानेवाला न होगा।

ईसार (त्याग की भावना)

आज दुनिया में भौतिकवाद (माद्दापरस्ती) छाया हुआ है। नफ़्स की इच्छा की पैरवी ने नेकी और बुराई की पहचान बदल दी है। ख़ुद-ग़रज़ी ने फ़ितरी मूल्यों को मिटा दिया है। जीवन स्तर ऊँचा करने की लालसा ने लोगों को भ्रष्टाचार के जाल में फँसा रखा है। प्यार-मुहब्बत के ख़मीर (माद्दे) से पैदा किया गया इनसान दरिन्दों जैसा जानवर बन गया है। वह दूसरों के ख़ून से अपनी प्यास बुझाने के लिए बेक़रार है। अमीर ग़रीबों, बेबसों और लाचारों के ख़ून- पसीने का कारोबार करने लगा है और उसी से अपनी ज़िन्दगी की आलीशान इमारत खड़ी करता है।

ख़ुद-ग़रज़ी ने पूरी इनसानियत में बेचैनी और बेक़रारी की हालत पैदा कर दी है। इस ख़तरनाक मर्ज़ का यह हाल है कि उसे कोसा जाता है, मगर उसके इलाज की चिन्ता नहीं की जाती। लेकिन इस बीमारी का एक यक़ीनी इलाज मौजूद है जिसने साढ़े चौदह सौ साल पहले ऐसे ही परागन्दा व ख़राब माहौल को ख़ुशगवार माहौल में बदल दिया था।

इस्लाम ने इनसानों को बताया कि मख़लूक़ (लोग) अपने ख़ालिक़ का कुनबा है। त्याग व क़ुरबानी इस्लाम की दावत का बुनियादी सबक़ है। इनसान की अपनी ज़रूरत पर दूसरों की ज़रूरतों को प्राथमिकता देना, मिसाल के तौर पर भूख की शिद्दत के बावजूद किसी भूखे आदमी को अपना खाना खिला देना, ईसार अथवा त्याग कहलाता है। क़ुरआन मजीद में ईमानवालों की ख़ूबियाँ बयान करते हुए कहा गया—

> "और वे अपनी ज़ात पर दूसरों को तरजीह (प्राथमिकता) देते हैं चाहे अपनी जगह वे ख़ुद मुहताज हों। हक़ीक़त यह है कि जो लोग अपने दिल की तंगी से बचा लिए गए वही कामयाबी पानेवाले हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-9)

इस आयत के पसमंज़र के तौर पर एक घटना हदीसों की किताबों में दर्ज है जो बड़ी ही असरदार और सबक़ हासिल करने लायक़ है। इससे ईसार या त्याग की अहमियत का अन्दाज़ा अच्छी तरह लगाया जा सकता है।

एक बार एक भूखा आदमी प्यारे नबी (सल्ल॰) के पास आया। इत्तिफ़ाक़ से उस वक़्त आप (सल्ल॰) के घर में पानी के सिवा कुछ न था। इसलिए आप (सल्ल॰) ने मजलिस में मौजूद सहाबा (रज़ि॰) से फ़रमाया, आज की रात इस मेहमान की मेहमान नवाज़ी का हक़ कौन अदा करेगा? एक अनसारी सहाबी, जिनका नाम अबू-तलहा (रज़ि॰) था, ने कहा, ऐ अल्लाह के रसूल! वे उनको साथ लेकर अपने घर आए। बीवी से पूछा, खाने को कुछ है? बोलीं, सिर्फ़ बच्चों का खाना है। बोले, बच्चों को किसी तरह बहला दो। जब मैं मेहमान को घर लेकर आऊँ तो चिराग़ बुझा देना। मैं उसपर ज़ाहिर करूँगा कि हम भी साथ खा रहे हैं। इसलिए उन्होंने ऐसा ही किया। सुबह को आप (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुए तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "रात के तुम्हारे अमल से अल्लाह तआला बहुत ख़ुश हुआ।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

दूसरों के दुख-दर्द को अपना दुख-दर्द समझना और अपनी तकलीफ़ को भूलकर दूसरों की परेशानी दूर करने के लिए बेक़रार हो जाना ही ईसार और त्याग है।

प्यारे नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी के बारे में पढ़कर यह मालूम होता है कि प्यारे नबी (सल्ल॰) की पूरी ज़िन्दगी ईसार व क़ुरबानी से भरी हुई थी। आप (सल्ल॰) पूरी इनसानियत के लिए हर वक़्त बेक़रार रहते थे। उनकी निजात की फ़िक्र आप (सल्ल॰) को बेक़रार रखती थी। क़ुरआन कहता है–

"अच्छा, तो ऐ नबी! शायद आप उनके पीछे ग़म के मारे अपनी जान खो देनेवाले हैं अगर ये इस तालीम (क़ुरआन) पर ईमान न लाएँ।" (क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-6)

नबी (सल्ल॰) अपने सहाबियों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए हर वक़्त कोशिश करते रहते थे। बैतुल-माल (हुकूमत का ख़ज़ाना) में कुछ

आता तो आप (सल्ल॰) उसे लोगों में बाँट देते थे। अगर कुछ न होता, फिर भी माँगनेवाले को वापस न करते। एक मौक़े पर आप (सल्ल॰) ने एलान फ़रमाया—

"जो कोई माल व असबाब छोड़कर मरेगा वह उसके वारिस का हक़ होगा, मगर जो कोई क़र्ज़ छोड़कर मरेगा उसे मैं अदा करूँगा।"

(हदीस : मुस्लिम)

यहाँ रुककर सोचने की ज़रूरत है। आज दुनिया में ऐसे कितने ही क़र्ज़दार हैं जो क़र्ज़ से परेशान हैं। उनके पास इतना पैसा नहीं होता कि अपना क़र्ज़ अदा कर सकें। साथ ही दुनिया में ऐसे बेशुमार मालदार लोग हैं जो अगर थोड़ा भी ध्यान दें तो ऐसे लोगों का मसला हल हो जाए। या बैतुल-माल की कोई अच्छी व्यवस्था हो तो इस क़र्ज़ की अदाएगी हो जाए। हदीसों में आता है कि नबी (सल्ल॰) के साथ अकसर फ़ाक़ाकशी की नौबत आ जाती थी। ऐसा कभी नहीं हुआ कि आप (सल्ल॰) ने तीन दिनों तक लगातार पेट भरकर खाना खाया हो। हज़रत आइशा (रज़ि॰) फ़रमाती हैं—

"प्यारे नबी (सल्ल॰) ने पूरी ज़िन्दगी कभी लगातार तीन दिनों तक पेट भरकर खाना नहीं खाया। अगर चाहते तो पेट भरकर खाना खा सकते थे, लेकिन हमेशा अपने ऊपर दूसरों को तरजीह देते थे।"

(हदीस : बैहक़ी)

बहुत-सी हदीसों में आता है कि कोई आदमी नबी (सल्ल॰) से अपनी ज़रूरत की कोई चीज़ माँग लेता तो उसे ख़ुद पर तरजीह देते हुए वह चीज़ उसे दे देते थे—

"हज़रत सह्ल-बिन-साद (रज़ि॰) फ़रमाते हैं कि एक औरत अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास एक बुनी हुई चादर लेकर आई और कहने लगी, ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने इसे अपने हाथ से बुना है, ताकि आप को पहनाऊँ। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उसकी ज़रूरत महसूस करते हुए क़बूल फ़रमा लिया, फिर आप (सल्ल॰) उसे तहबन्द के तौर पर बाँधकर हमारे बीच तशरीफ़ लाए तो एक सहाबी (रज़ि॰) ने कहा, यह आप मुझे पहना दें।

कितनी ख़ूबसूरत है यह चादर! आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, अच्छा! फिर आप (सल्ल॰) मजलिस से उठकर घर में तशरीफ़ ले गए और उस चादर को उतारकर लपेटा और उस आदमी के पास भेज दिया। लोगों ने उस आदमी से कहा, प्यारे नबी (सल्ल॰) ने वह चादर अपनी ज़रूरत समझकर पहनी थी, लेकिन तुमने उसे आप (सल्ल॰) से माँग लिया। तुम्हें मालूम है कि आप (सल्ल॰) किसी माँगनेवाले को वापस नहीं करते। उसने कहा, अल्लाह की क़सम! मैंने यह पहनने के लिए नहीं माँगी है, बल्कि मैंने तो यह इसलिए माँगी है, ताकि आप (सल्ल॰) के मुबारक जिस्म से लगी हुई बरकतवाली चादर मेरा कफ़न बन जाए। हदीस बयान करनेवाले कहते हैं कि यह चादर उसके कफ़न के ही काम आई।" (हदीस : बुख़ारी)

ईसार व क़ुरबानी के जज़्बे को हम सहाबा (रज़ि॰) की ज़िन्दगी में भी अच्छी तरह देख सकते हैं। उन्होंने इसे अपनी ज़िन्दगी का ज़रूरी हिस्सा समझ लिया था। हज़रत अबू-तलहा (रज़ि॰) की मिसाल ऊपर गुज़र चुकी है। एक दूसरी घटना, जो बहुत ही असर करनेवाली और सबक़ देनेवाली है और सीरत की अकसर किताबों में इसका ज़िक्र मिलता है, यह बेहतरीन मिसाल हमेशा इनसान के अन्दर ईसार व क़ुरबानी की रूह फूँकती रहेगी—

> "यरमूक की जंग में हज़रत इकरिमा (रज़ि॰), हज़रत हारिस-बिन-हिशाम (रज़ि॰) और हज़रत सुहैल-बिन-अम्र (रज़ि॰) ज़ख़्म खाकर ज़मीन पर गिरे। इस हालत में हज़रत इकरिमा (रज़ि॰) ने पानी माँगा। पानी आया तो देखा हज़रत सुहैल (रज़ि॰) पानी की तरफ़ देख रहे हैं, बोले, पहले उनको पिलाओ। हज़रत सुहैल (रज़ि॰) के पास पानी आया तो उन्होंने देखा कि हज़रत हारिस (रज़ि॰) की निगाह भी पानी की तरफ़ है। बोले, उनको पिलाओ। नतीजा यह हुआ कि किसी के मुँह में पानी का एक क़तरा न गया और सबने उसी प्यास की हालत में जान दी।" (उसवा-ए-सहाबा, जिल्द-1, पेज-156)

अगर कोई हमसे हमारी महबूब चीज़ माँग ले तो क्या हम दे सकते हैं? कभी एक ही चीज़ कई लोगों को पसन्द होती है। जिसे हासिल करना वे अपना मक़सद बना लेते हैं। कभी-कभी वह चीज़ नाक का मसला बन जाती

है और क़त्ल और ख़ून-ख़राबे तक की नौबत आ जाती है। यहाँ इनसान के ईसार व क़ुरबानी का इम्तिहान होता है। सहाबा (रज़ि॰) के ईसार की एक बेहतरीन मिसाल यह भी है कि हज़रत आइशा (रज़ि॰) के कमरे में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) और हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) के दफ़न होने के बाद सिर्फ़ एक क़ब्र की जगह बची थी। हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने इसे अपने लिए ख़ास कर रखा था। लेकिन जब हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उनसे वह जगह माँगी तो उन्होंने ईसार व क़ुरबानी के जज़्बे से काम लेते हुए वह जगह उन्हें दे दी। हज़रत आईशा (रज़ि॰) ख़ुद बयान करती हैं—

"मैंने ख़ुद अपने लिए उस जगह को महफ़ूज़ कर रखा था, लेकिन आज ईसार से काम लूँगी।" (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत आइशा (रज़ि॰) का एक और सबक़-आमोज़ वाक़िया हदीस की किताबों में दर्ज है—

"एक मिसकीन ने हज़रत आइशा (रज़ि॰) से कोई चीज़ माँगी, जबकि वे रोज़े से थीं और सिवाय रोटी के घर में कुछ न था। उन्होंने ख़ादिमा से कहा, यह रोटी उसको दे दो। ख़ादिमा ने कहा, इसके अलावा घर में कुछ नहीं है। आप इफ़्तार क्या करेंगी? फिर भी उन्होंने यही फ़रमाया कि यह उसे दे दो। चुनाँचे ख़ादिमा ने उस मिसकीन को रोटी दे दी। शाम के वक़्त उनके पास बकरी का सालन हदिए (तोहफ़े) के तौर पर आया। आइशा (रज़ि॰) ने ख़ादिमा से कहा, तो यह खाओ। यह उस टुकड़े से बेहतर है।"

(हदीस : बैहक़ी)

ईसार और क़ुरबानी इस्लामी समाज की एक ख़ास ख़ूबी है। सहाबा (रज़ि॰) ने हमेशा दूसरों के दुख-दर्द और ज़रूरतों को महसूस करते हुए, उन्हें ख़ुद पर तरजीह दी। इसी बुनियाद पर क़ुरआन मजीद ने उन्हें "रुहमाउ बै-नहुम" (आपस में बहुत ज़्यादा रहम करनेवाले) के सम्मान से नवाज़ा है। ईसार की कुछ मिसालें नीचे दी जा रही हैं—

1. एक बार हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि॰) ने एक आदमी का

वाक़िया बताया—

"एक आदमी ने एक बकरी की सीरी हदिए के तौर पर किसी के घर भिजवाई। जिसको दी गई उसने कहा, उसे मेरे फ़ुलाँ भाई को दे दो कि वह मुझसे ज़्यादा उसका ज़रूरतमन्द है। जिस आदमी के पास उसे भिजवाया गया, उसने उसे दूसरे के घर भिजवा दिया। इस तरह वह लगातार सात घरों से होती हुई दोबारा उस पहले आदमी के पास पहुँच गई।" (हदीस : बैहक़ी)

2. एक बार हज़रत उमर (रज़ि॰) ने चार सौ दीनार से भरी हुई थैली अपने ग़ुलाम को देते हुए कहा, "इसे अबू-उबैदा-बिन-जर्राह (रज़ि॰) के पास ले जाओ, फिर वहीं कुछ देर रुके रहो, ताकि तुम देख सको कि वे क्या करते हैं?" हज़रत अबू-उबैदा-बिन-जर्राह (रज़ि॰) ने पहले तो दुआ दी, फिर थैली ली और अपनी बाँदी (ख़ादिमा) को बुलाकर कहा, "इस थैली से सात दीनार फ़ुलाँ को दे दो, पाँच फ़ुलाँ को", यहाँ तक कि सारा माल तक़सीम कर दिया। अपने लिए कुछ न रखा।

हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उतने ही दीनार हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) को भिजवाए। उन्होंने भी वैसा ही किया जैसा कि हज़रत अबू-उबैदा (रज़ि॰) ने किया था।

हज़रत मुआज़ (रज़ि॰) की बीवी ने उनसे कहा, "अल्लाह की क़सम! हम भी मिसकीन हैं। कुछ तो रोक लीजिए। उस वक़्त थैली में सिर्फ़ दो दीनार बचे थे, सो उनको दे दिए।

ग़ुलाम ने हुक्म के मुताबिक़ आकर सारी आँखों देखी बयान की तो हज़रत उमर (रज़ि॰) बहुत ख़ुश हुए।

इनसान किसी को कोई क़र्ज़ देता है तो उसका हक़ है कि वह तय किए गए वक़्त पर उसे वुसूल कर ले। अगर क़र्ज़दार मजबूरी या तंगी की वजह से अदा नहीं कर पा रहा है तो उसे मुहलत दी जानी चाहिए। बहरहाल क़र्ज़ एक हक़ है जिसे देनेवाला वुसूल कर सकता है। अगर माफ़ कर दे तो यह ईसार व क़ुरबानी की एक बड़ी मिसाल होगी। ऐसा ही एक वाक़िया हज़रत

क़ैस-बिन-साद-बिन-उबादा (रज़ि॰) का है, जो फ़ैयाज़ी व दानशीलता में बहुत मशहूर थे।

जब वे बीमार हुए तो अकसर लोग उनको देखने और हाल जानने के लिए नहीं आए! वजह पूछी गई तो पता चला कि वे उनसे लिए गए क़र्ज़ की अदाएगी न होने की शरमिन्दगी की वजह से न आ सके। तो हज़रत क़ैस (रज़ि॰) ने फ़रमाया कि अल्लाह की रुसवाई हो ऐसे माल पर जो लोगों को मुलाक़ात से रोक दे। फिर उन्होंने एलान करवा दिया कि जिन लोगों पर उनका क़र्ज़ है, वह सब माफ़ है।" (मदारिजुस्सालिकीन)

ईसार व क़ुरबानी ज़िन्दगी के हर मैदान में होनी चाहिए। यह जिस तरह आम लोगों के लिए ज़रूरी है उसी तरह ज़िम्मेदारों के लिए भी ज़रूरी है। एक ज़िम्मेदार अक्सर बड़ी आसानी से कह देता है कि लोगों को ईसार और हमदर्दी से काम लेना चाहिए, लेकिन ख़ुद उसका रवैया इसके ख़िलाफ़ होता है। वह ख़ुद किसी क़िस्म की क़ुरबानी और ईसार के लिए तैयार नहीं होता है। उसकी अमली ज़िन्दगी उसकी बातों को नकारती है। इसलिए उसकी बात में कोई असर नहीं होता। दूसरी ओर आम लोग अपने रहनुमाओं से ईसार व क़ुरबानी की उम्मीद रखते हैं, मगर ख़ुद उनकी ज़िन्दगी इससे ख़ाली होती है।

जब तक ईसार व क़ुरबानी का जज़्बा तमाम लोगों में पैदा न होगा, उस वक़्त तक न ख़ुद-ग़रज़ी का माहौल बदल सकता है, न बेहतरी की उम्मीद की जा सकती है, बल्कि ख़ुद-ग़रज़ी की आग तेज़ होती चली जाएगी, जिससे समाज झुलसता रहेगा। ईसार ही वह पानी है जो इस आग को बुझा सकता है।

सदक़े (दान) के अस्ल मानी व मतलब

इनसान इस दुनिया में जो भी नेक काम करेगा, आख़िरत में अल्लाह के पास उसका बेहतर बदला पाएगा। उन्हीं नेक कामों में से एक काम सदक़ा (दान) है। इस्लाम में सदक़े (दान) की बड़ी अहमियत बयान की गई है। उसे इनसान और जहन्नम के बीच हिजाब (यानी पर्दा) क़रार दिया गया है। इससे दुनिया में भी इनसान बहुत-सी मुसीबतों से महफ़ूज़ रहता है। सदक़े का एक आम मतलब जो अकसर लोगों के ज़ेहन में रहता है, वह है मालदार लोगों का अपना माल अपनी जेब से निकालकर ग़रीब और मिसकीन लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए उनकी झोली में डाल देना। क़ुरआन मजीद और हदीस में इसे 'इनफ़ाक़' (माल ख़र्च करना) भी कहा गया है। इसका स्पष्ट हुक्म दिया गया है और ऐसा करनेवालों की तारीफ़ बयान की गई है। सदक़े के सिलसिले में क़ुरआन का हुक्म है—

> "तुम नेकी को नहीं पहुँच सकते जब तक कि अपनी वे चीज़ें (ख़ुदा की राह में) ख़र्च न करो, जिनको तुम अज़ीज़ (प्रिय) रखते हो और जो कुछ तुम ख़र्च करोगे अल्लाह उससे बाख़बर होगा।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-3 आले इमरान, आयत-92)

सदक़ा देने में सुस्ती नहीं करनी चाहिए, चाहे मात्रा में थोड़ा ही क्यों न हो। क्योंकि यह गुनाहों के भड़कते शोले को ऐसे ही ठण्डा करता है जैसे पानी आग के दहकते अँगारे को ठण्डा कर देता है। हदीसों से मालूम होता है कि सदक़े के महदूद (सीमित) मानी और मतलब नहीं हैं, बल्कि वह अपने अन्दर बहुत से मानी और मतलब रखता है और उसका मैदान बहुत ही फैला हुआ है। मिसाल के तौर पर एक हदीस में है कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "जहन्नम की आग से बचो, अगरचे एक खजूर के टुकड़े से ही क्यों न हो।" (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस में जहन्नम से निजात का तरीक़ा बयान किया गया है और वह है माल ख़र्च करना, चाहे उसकी मात्रा कितनी ही कम क्यों न हो।

इसी बारे में एक दूसरी हदीस है जिसमें विस्तार से सदक़े की कुछ सूरतें बताई गई हैं। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"हर मुसलमान पर सदक़ा वाजिब है।" एक सहाबी (रज़ि॰) ने कहा—"जिसके पास कुछ न हो वह क्या करे?" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "वह अपने हाथों से काम करे, ख़ुद को नफ़ा पहुँचाए और सदक़ा भी करे।" सहाबी (सल्ल॰) ने कहा, "अगर वह उसकी ताक़त न रखता हो?" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "लाचार, ज़रूरतमन्द की मदद करे।" सहाबी (रज़ि॰) ने कहा, "अगर वह उसकी भी क़ाबलियत न रखता हो?" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "वह नेकी और भलाई का हुक्म दे।" सहाबी (रज़ि॰) ने कहा, "अगर वह उसकी भी क़ाबलियत न रखता हो।" नबी (सल्ल॰) ने कहा, "वह दूसरों को तकलीफ़ पहुँचाने से बचे। यह भी सदक़ा है।"
>
> (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस से मालूम हुआ कि सदक़ा तमाम मुसलमानों पर ज़रूरी है। अगर इनसान ख़ुद कमाकर अपनी और ज़रूरतमन्दों की मदद कर रहा है तो ऐसा करना उसके लिए सदक़ा शुमार होगा। अगर वह इतना बेबस और लाचार है कि यह ज़रूरत पूरी नहीं कर सकता तो उस सूरत में कई तरीक़ों की निशानदेही की गई है। अगर वह भलाई का हुक्म दे और बुरी बातों से रोके तो यह भी एक प्रकार का सदक़ा है। सदक़े का यही मानी और मतलब एक दूसरी हदीस से भी मालूम होता है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "इनसानों के शरीर के तमाम जोड़ों पर रोज़ाना सदक़ा वाजिब है। तुम दो इनसानों के बीच इनसाफ़ से फ़ैसला कर दो, यह सदक़ा है। सवारी पर चढ़ने में किसी आदमी की मदद कर दो या उसका सामान उसपर लाद दो, यह सदक़ा है। अच्छी बात सदक़ा है। नमाज़ के लिए उठनेवाला हर क़दम सदक़ा है। रास्ते से तकलीफ़देह

चीज़ हटा दो, यह सदक़ा है।" (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस में नबी (सल्ल॰) ने इनसान के जिस्म में पाए जानेवाले जोड़ों का ज़िक्र किया है। 'सहीह मुस्लिम' की हदीस में उनकी तादाद 360 बताई गई है। आज मेडिकल साइंस के माहिर भी इसकी तसदीक़ करते हैं। हदीस के मुताबिक़ रोज़ाना उनपर सदक़ा वाजिब है। इस तरह एक हफ़्ते में लगभग दो हज़ार पाँच सौ बीस (2520) सदक़ात हुए। आप (सल्ल॰) ने उनको अदा करने के जो तरीक़े बयान फ़रमाए हैं वे बहुत ही आसान हैं, जिन्हें ग़रीब और अमीर समान रूप से अपना सकते हैं।

हदीसों में सदक़े की ऐसी और भी बहुत-सी मिसालें बयान की गई हैं जिनमें माल व असबाब ख़र्च नहीं होते, मगर उन्हें भी सदक़ा कहा गया है। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तेरा अपने भाई के चेहरे पर हँसी लाना सदक़ा है। भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना सदक़ा है। भटके हुए मुसाफ़िरों को राह दिखाना भी सदक़ा है। कमज़ोर बीनाईवाले (नज़रवाले) आदमी की रहनुमाई करना सदक़ा है। पत्थर, काँटे और हड्डी को रास्ते से हटा देना सदक़ा है। अपने डोल से अपने भाई के डोल में पानी भर देना भी सदक़ा है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

ये वे बेहतरीन ख़ूबियाँ हैं कि जिस इनसान के अन्दर भी पाई जाएँ वह अच्छे अख़लाक़वाला समझा जाता है। आप (सल्ल॰) ने इस तरह के तमाम कामों को सदक़ा क़रार दिया है।

मौजूदा दौर में लोग पर्यावरण को बेहतर बनाने के लिए पेड़ लगाने की बात करते हैं। उसपर काफ़ी ज़ोर दिया जाता है। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने आज से साढ़े चौदह सौ साल पहले ही उसकी अहमियत बयान फ़रमा दी थी और पेड़ लगाने को सदक़ा क़रार दिया था। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"मुसलमान कोई पेड़ लगाता है या खेती करता है और उसमें से कोई इनसान, परिन्दा या कोई जानवर खा ले तो यह उस (पेड़ लगानेवाले) के लिए सदक़ा है। उसी तरह किसी ने उससे चोरी कर

ली तो भी यह उसके लिए सदक़ा है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

बुख़ारी की एक हदीस में नबी (सल्ल॰) ने कहा है—

"मुसलमान अगर कोई पेड़ लगाए और उसमें से कोई इनसान, चौपाया या परिन्दा खा ले तो यह उसके लिए क़ियामत तक सदक़ा है।"

इनसान अपनी बीवी के पास अपनी जिन्सी ख़ाहिश (यौन-इच्छा) को पूरा करने के लिए जाता है, जो कि नस्ल बढ़ाने का एक तरीक़ा है। हदीस में उसे भी सदक़ा कहा गया है। एक मौक़े पर प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिन्सी ज़रूरत (यौन-इच्छा) को पूरा करने के लिए इनसान का अपनी बीवी के पास जाना भी सदक़ा है। सहाबा (रज़ि॰) ने पूछा, ऐ अल्लाह के रसूल! हममें से हर एक यह काम अपनी यौन-इच्छा को पूरा करने के लिए करता है। तो क्या इसमें भी सवाब है? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, तुम्हारा क्या ख़याल है? अगर वह अपनी यह ज़रूरत किसी हराम जगह पूरी करता तो उसपर गुनाह नहीं होता? उसी तरह चूँकि उसने यह हलाल तरीक़ा अपनाया, इसलिए यह उसके लिए सवाब की वजह है।" (हदीस : मुस्लिम)

इन तमाम बातों का हासिल यह है कि सदक़ा अदा करने के बहुत-से तरीक़े हैं। चाहे माल के ज़रिए से हो या दूसरे तरीक़ों से। इसके मानी और मतलब बहुत बड़े और व्यापक हैं। सदक़े के हुक्म का मक़सद यह है कि समाज में कोई नंगा-भूखा न रहे। वह हर तरह की गन्दगी और बुराई से पाक और पुरअम्न हो और ख़ुदा के तमाम बन्दों की सारी ज़रूरतें पूरी हों। इसी लिए प्यारे नबी (सल्ल॰) ने सदक़े के सिलसिले में एक जामे और बेहतरीन बात बयान की है—

"हर नेक काम सदक़ा है।" (हदीस : बुख़ारी)

माल में ग़रीबों का हक़

मौजूदा मुस्लिम समाज का जाइज़ा लिया जाए तो अन्दाज़ा होता है कि आज मुसलमान ईमान व अपने कामों के एतिबार से ही नहीं, बल्कि ज़ाहिरी साधनों और आर्थिक हालात के लिहाज़ से भी कमज़ोर, बेबस और लाचार हैं। उनमें से जो दौलतमन्द और मालदार हैं उन्होंने माल को अपनी तिजोरियों में जमा कर रखा है। वे ग़रीबों की ज़रूरतों को अनदेखा करते हैं और सिर्फ़ अपनी ज़ात पर ख़र्च करते हैं या ग़लत तरीक़े और ग़लत बातों में अपने माल को बरबाद करते हैं।

उनके अन्दर दीनी ग़ैरत व ख़ुद्दारी और ईमान की मिठास नहीं है जिसकी वजह से अल्लाह से उनकी दूरी बढ़ती जा रही है। पहले उनके अन्दर दीन का जो जज़्बा पाया जाता था और जिसे उनकी सबसे बड़ी ताक़त माना जाता था, अब वह जज़्बा कहीं नज़र नहीं आता। अब वे दूसरों की तरह भेदभाव के शिकार हैं, जो उनको खोखला और बेवज़्न कर रहा है। उनके अन्दर पहले जैसी एकता और सहमति नहीं, जो ईमानी भाईचारे की वजह से उन्हें एक जगह जमा रख सके।

वे अलग-अलग गरोहों और सम्प्रदायों में बँटे हुए हैं। हर गरोह अपनी ज़ात और बिरादरी को पहला दर्जा देता है। उसके पड़ोस में रहनेवाला कोई दूसरा इनसान चाहे बेबसी और लाचारी की हालत में मर रहा हो, मगर वह उसे पूछता तक नहीं और न उसकी मदद के लिए कोई क़दम उठाता है, जबकि इस्लाम का यह तरीक़ा नहीं। ईमान जैसे मज़बूत रिश्ते की वजह से तमाम मुसलमानों का एक-दूसरे पर यह हक़ बनता है कि वे एक-दूसरे का ख़याल रखें।

माल व दौलत के सिलसिले में मुसलमानों के बीच दो तरह के रवैये पाए जाते हैं। कुछ लोग उसे अपने दाँतों से पकड़े रहते हैं और उसे हासिल करने

में हलाल और हराम का फ़र्क़ भी भूल जाते हैं। दूसरी ओर कुछ लोग अपनी अक़्ल की कमी और तंगनज़री की वजह से मालो-दौलत को कोई अहमियत ही नहीं देते। वे उसे बुरी व ख़राब चीज़ समझते हैं। चुनाँचे ख़ाली हाथ और कंगाल रह जाते हैं। फिर बाल-बच्चों का रोना-धोना सुनकर हाथ फैलाने पर मजबूर हो जाते हैं। औरतें अपने मासूम बच्चों की ख़ातिर इज़्ज़त नीलाम कर बैठती हैं या ज़हर देकर उन्हें मौत की नींद सुला देती हैं। ये दोनों रवैये सही नहीं हैं। सच्चाई यह है कि माल व दौलत अल्लाह तआला की नेमत है। क़ुरआन मजीद में इसको अल्लाह का फ़ज़्ल क़रार दिया गया है।

"जब तुम नमाज़ से फ़ारिग़ हो जाओ, तो ज़मीन में फैल जाओ और अल्लाह का फ़ज़्ल तलाश करो।"

(क़ुरआन, सूरा-62 जुमा, आयत-10)

पता चला कि माल कोई घटिया चीज़ नहीं है कि उससे आँख मून्द ली जाए और उसकी तलाश और जुस्तजू न की जाए। ख़ुद अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने भी इसकी अहमियत को उजागर करते हुए कहा है—

"बेशक अल्लाह मालदार मुत्तक़ी (परहेज़गार) और गुमनामी अपनानेवालों को पसन्द करता है।" (हदीस : मुस्लिम)

प्यारे नबी (सल्ल॰) और बड़े-बड़े सहाबियों (रज़ि॰) की पाक ज़िन्दगी पर नज़र डाली जाए तो मालूम होता है कि उन्होंने व्यापारिक गतिविधियाँ अंजाम दी हैं। हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि॰) इतने मालदार थे कि उनके इन्तिक़ाल के बाद उनके पास जो सोना था, उसे कुल्हाड़ी से काटकर वारिसों के बीच बाँटा गया। (उसदुल-ग़ाबा, जिल्द-3, पेज-317)

हज़रत मिर्ज़ा जाने जानाँ (रह॰) की बारीक मिज़ाजी और ऊँचा जीवन स्तर सूफ़ियों के बीच काफ़ी मशहूर है। कहा जाता है कि वह रोज़ाना नया लिबास पहनते थे।

इसी तरह हज़रत इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) की ज़िन्दगी देखी जाए तो इल्मो-अमल के साथ अल्लाह तआला ने मालो-दौलत भी काफ़ी दे रखा था। चुनाँचे वे अच्छे कपड़े पहनते थे और अपने दोस्तों पर भी ख़ूब ख़र्च करते

थे। उनका शुमार कपड़ों के बड़े व्यापारियों में होता था।

इनके अलावा भी इतिहास में बहुत-से लोगों का ज़िक्र मिलता है जिन्हें अल्लाह तआला ने माल और दौलत से नवाज़ा था और वे उसके ज़रिए से बहुत-सी दीनी ख़िदमतें अंजाम देते थे।

रही बात क़ुरआन और हदीसों में मालो-दौलत की निन्दा की, तो यह उस मालो-दौलत के सिलसिले में है जो हराम हो और जिसे फ़ख़्र करने के लिए ग़लत ढँग से हासिल किया जाए। जो इनसान को अपने ख़ालिक़ (पैदा करनेवाले) और मालिक की याद से ग़ाफ़िल कर दे। जिसको बढ़ाने के लिए दिल हमेशा बेचैन और परेशान हो। या फिर उसमें से फ़क़ीरों और मिसकीनों का हक़ न अदा किया गया हो। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

> "ऐ लोगो! जो ईमान लाए हो, तुम्हारे माल और तुम्हारी औलादें तुमको अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल न कर दें। जो लोग ऐसा करें वही नुक़सान व घाटे में रहनेवाले हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-63 मुनाफ़िक़ून, आयत-9)

अगर किसी के पास माल न हो तो वह अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए दूसरे लोगों के सामने हाथ फैलाएगा जिसकी मनाही हदीसों में आई है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है–

> "तुममें से कोई आदमी बराबर दूसरों के सामने हाथ फैलाता रहता है। ऐसा आदमी अल्लाह तआला से इस हाल में मिलेगा कि उसके चेहरे पर कुछ गोश्त न होगा।" (हदीस : मुस्लिम)

इसी तरह वह वाक़िया भी ज़ेहन में रहना चाहिए कि एक आदमी अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और नबी (सल्ल॰) के सामने हाथ फैलाया। नबी (सल्ल॰) ने पूछा, "तुम्हारे पास कुछ है?" उसने जवाब दिया, "हाँ! एक चादर और एक प्याला!" नबी (सल्ल॰) ने उससे दोनों चीज़ें माँग लीं और उन्हें बेचने को कहा। एक सहाबी ने उन्हें ख़रीद लिया। नबी (सल्ल॰) ने उस रक़म को उस आदमी के हवाले करते हुए कहा कि "आधे पैसों से घर के लिए खाने-पीने की चीज़ें ख़रीदो और आधे पैसों

से कुल्हाड़ी ख़रीद लो।" उसने ऐसा ही किया। आप (सल्ल॰) ने अपने मुबारक हाथों से उसमें दस्ता लगाया और हुक्म दिया कि जंगल जाकर इससे लकड़ी काटो और बाज़ार में बेचो। उसने ऐसा ही किया और इस तरह उसकी माली हालत सुधर गई।

इस वाक़िए से यह बात सामने आती है कि अल्लाह ने जब तक बाज़ू में ताक़त दी हो, आदमी को दूसरों के सामने हाथ नहीं फैलाना चाहिए।

बहरहाल इन तमाम बातों को सामने रखते हुए यह कहना बिलकुल सही है कि माल अल्लाह की नेमत है। यह दीन की ख़िदमत करने का बेहतरीन ज़रिआ है और इससे हमारी माली ज़रूरतें भी पूरी होती हैं और इससे दूसरे ज़रूरतमन्दों, मोहताजों और ग़रीबों की सेवा भी होती है जो बड़ा नेक काम है।

○○